जुलाई 2020

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

मूल्यः ₹ 30.00

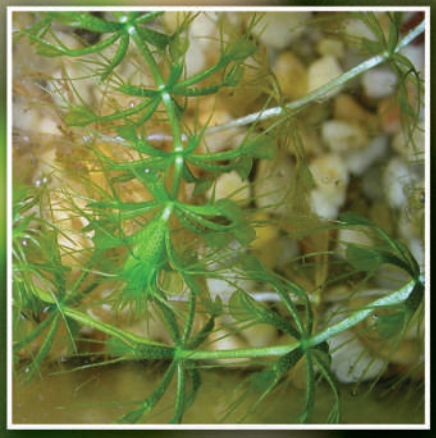

मांसाहारी पौधों में मांस के चस्के का विकास

02 कोरोनावायरसः टीकों की प्रगति

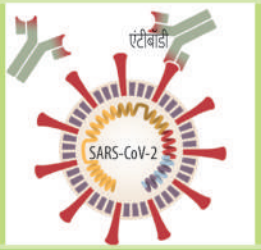

22 जीवाश्म पर अधिकार भू-स्वामि का

30 समय से पहले फूल खिला देते हैं भूखे भंवर

35 बकरियों का पालतू गुण

वर्ग पहेली 190

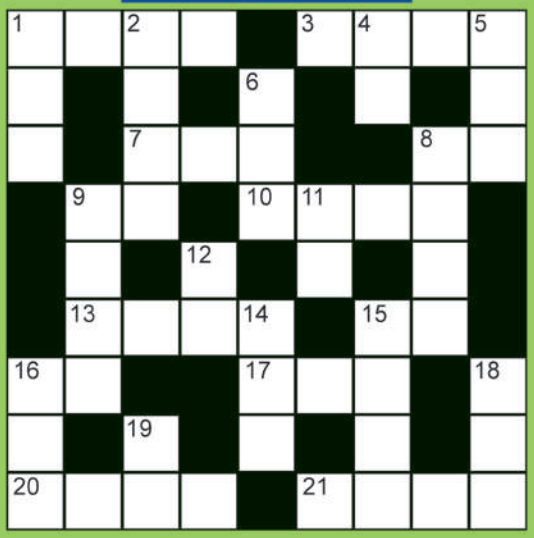

संकेत :

दाएं से बाएं -

1. निहारिका (4)
3. मानचित्रों की पुस्तक (4)
7. किट में आधे रीछ का मुकुट (3)
8. आधे गुलदस्ते से बिजली बंद (2)
9. जाड़ों में खेतों में पड़ता है (2)
10. पदार्थ सायरन की गड़बड़ से (4)
13. विभाजन का परिणाम (4)
15. सतना में वृक्ष का एक हिस्सा (2)
16. सबको सीने में छिपाए एक नदी (2)
17. बिगड़े पालक का माथा (3)
20. करीब-करीब (4)
21. समुद्र किनारे के स्थान (4)

ऊपर से नीचे -

1. लाल ग्रह (3)
2. इस पक्षी की चोंच ने बुलेट ट्रेन को सुधारा (4)
4. आधे पर्यटन का भार (2)
5. आसान (3)
6. आनुवंशिकी के ऐतिहासिक दाने (3)
8. हल्का गर्म (4)
9. साफ छिपता भी नहीं, नज़र आता भी नहीं (4)
11. वर्ष (2)
12. तीन दोषों में से एक (2)
14. अपलक वायु में पंगुता (3)
15. छल तट बिगड़कर नीचे जमे पदार्थ (4)
16. घोंसला परजीवी पक्षी (3)
18. नियमित अंतराल पर दोहराने वाली क्रिया (3)
19. आकाश (2)

स्रोत

विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

जुलाई 2020

वर्ष-14 अंक-07 (पूर्णांक 378)

संपादन एवं संचालन

एकलव्य

जमनालाल बजाज परिसर,

जाटखेड़ी, भोपाल - 462026

फोन : (0755) 2977770, 2977771, 72, 73

ई-मेल : srote@eklavya.in, srotefeatures@gmail.com

www.srotefeatures.in, www.eklavya.in

संपादक

सुशील जोशी

सहायक संपादक

प्रतिका गुप्ता

ज़ुबैर सिद्दिकी

आवरण डिज़ाइन

रोहित कोकिल

उत्पादन सहयोग

इंदु नायर, कमलेश यादव

राकेश खत्री

वितरण

झनक राम साहू

सदस्यता शुल्क

300 रुपए

एक प्रति 30 रुपए

चंदे की रकम कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।

कोरोनावायरस: टीकों की प्रगति		2
महामारी का अंत कैसे होगा		5
कोविड-19: वैकल्पिक समाधान	भारत डोगरा	7
पारंपरिक विश्वास और आज का विज्ञान	डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन	9
कोविड-19 से उत्पन्न छः संकट	रामचंद्र गुहा	11
महामारी के अगले दो वर्ष		13
कोविड-19: न टीका चाहिए, न सामूहिक प्रतिरोध	मिलिंद वाटवे	14
आधा मस्तिष्क भी काम करता है!	डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा	16
ऑटिज़्म अध्ययन को एक नई दिशा		18
खराब प्रतिरक्षा कोशिकाएं हमें बूढ़ा बना सकती हैं		19
नाक के सूक्ष्मजीव संसार में मिला नया बैक्टीरिया		20
मंगल पर कभी नदियां बहा करती थीं!	प्रदीप	21
जीवाश्म पर अधिकार भू-स्वामि का		22
टेलीफोन केबल से भूकंप संवेदन		23
लॉकडाउन के बावजूद कार्बन उत्सर्जन में कमी नहीं		23
वनों की ग्रीनहाउस गैस सोखने की क्षमता घट सकती है		25
सांडा: मरुस्थलीय भोजन श्रृंखला का आधार	चेतन मिशर	26
कॉम्ब जेली का जाड़ों का भोजन उन्हीं के बच्चे		28
किशोर कुत्तों का व्यवहार मानव किशोर जैसा		29
समय से पहले फूल खिला देते हैं भूखे भंवरे		30
सांपों की धींगामुश्ती: प्रणय या युद्ध	कालू राम शर्मा	31
टिड्डियों को झुंड बनाने से कैसे रोकें	डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन	32
चींटियां स्मृतियां मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों में संजोती हैं		33
चोरनी चींटियां अन्य चींटियों के बच्चे खाती हैं		34
बकरियों का पालतू गुण		35
चमगादड़ हमारे दुश्मन नहीं हैं		36
मांसाहारी पौधों में मांस के चस्के का विकास		37

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह मासिक संस्करण स्वयंसेवी संस्थाओं, सरकारी संस्थाओं व पुस्तकालयों, विज्ञान लेखन से संबद्ध तथा विज्ञान व समाज के रिश्तों में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के विशेष अनुरोध पर स्रोत के साप्ताहिक अंकों को संकलित करके तैयार किया जाता है। यहां प्रकाशित सामग्री का उपयोग गैर व्यावसायिक कार्यों के लिए करने हेतु किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। स्रोत का उल्लेख अवश्य करें।

कोरोनावायरसः टीकों की प्रगति

टीकों पर काम जनवरी में कोविड-19 के लिए ज़िम्मेदार SARS-CoV-2 के जीनोम के खुलासे के बाद शुरू हुआ था। इंसानों में टीके की सुरक्षा का पहला परीक्षण मार्च मे शुरू हुआ। इस समय दुनिया भर में वैज्ञानिक कोरोनावायरस के खिलाफ 135 से ज़्यादा टीकों पर काम कर रहे हैं। हो सकता है कि इनमें से कुछ मनुष्य के प्रतिरक्षा तंत्र को वायरस के खिलाफ कारगर एंटीबॉडी बनाने को तैयार करे।

टीका विकसित करने की प्रक्रिया आसान नहीं होती। इसके कई चरण होते हैं:

- **प्री-क्लीनिकल चरण**: वैज्ञानिक संभावित टीका चूहों या बंदर जैसे किसी जंतु को देकर देखते हैं कि उनमें प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया पैदा होती है या नहीं।
- **चरण 1**: टीका थोड़े से मनुष्यों को दिया जाता है ताकि उसकी सुरक्षितता, खुराक की जांच के अलावा यह देखा जा सके कि मनुष्य में प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया उभरती है या नहीं।
- **चरण 2**: टीका सैकड़ों लोगों को दिया जाता है, और विभिन्न समूहों (जैसे बच्चों, बुज़ुर्गों) को अलग-अलग दिया जाता है। मकसद चरण 1 के समान ही होता है।
- **चरण 3**: टीका हज़ारों लोगों को देकर इंतज़ार किया जाता है कि उनमें से कितनों को संक्रमण हो जाता है। इस चरण में एक समूह ऐसे लोगों का भी होता है जिन्हें टीके की बजाय वैसी ही कोई औषधि दी जाती है। इस चरण में पता चलता है कि क्या वह टीका लोगों को संक्रमण से बचाता है।

फिलहाल विकसित किए जा रहे टीके विभिन्न चरणों में हैं:

प्री-क्लीनिकल चरण	चरण 1	चरण 2	चरण 3	स्वीकृत
125	8	8	2	0
अभी इंसानी परीक्षण तक नहीं पहुंचे हैं	सुरक्षा और खुराक की जांच	विस्तृत सुरक्षा जांच	असर की व्यापक जांच	स्वीकृत

कभी-कभी टीके के विकास को गति देने के लिए एकाधिक चरणों को जोड़कर एक साथ सम्पन्न किया जाता है। इस वायरस के मामले में **ऑपरेशन वार्प स्पीड** के तहत ऐसा किया जा रहा है। टीके विभिन्न किस्म के हैं।

जेनेटिक टीके

ये ऐसे टीके हैं जिनमें वायरस की अपनी जेनेटिक सामग्री के किसी खंड का उपयोग किया जाता है।

- मॉडर्ना ने ऑपरेशन वार्प स्पीड के तहत वायरस के एम-आरएनए पर आधारित टीके का परीक्षण मात्र 8 लोगों पर करके चरण 1 व 2 को साथ-साथ पूरा किया, हालांकि वैज्ञानिकों ने इसके परिणामों पर शंका ज़ाहिर की है।
- ऑपरेशन वार्प स्पीड के तहत ही जर्मन कम्पनी बायोएनटेक, फाइज़र और एक चीनी दवा कम्पनी ने मई में अपने टीके के इंसानी परीक्षण की घोषणा की और उम्मीद है कि जल्दी ही यह बाज़ार में आ जाएगा।
- इम्पीरियल कॉलेज लंदन के वैज्ञानिकों ने आरएनए टीका विकसित किया है जो खुद अपनी प्रतिलिपियां बनाता है। उन्होंने 15 जून से चरण 1 व 2 के परीक्षण शुरू किए हैं।
- अमेरिकी कम्पनी इनोवियो ने मई में प्रकाशित किया कि उसका डीएनए-आधारित टीका चूहों में एंटीबॉडी पैदा करता है। अब चरण 1 का परीक्षण चल रहा है।

वायरस-वाहित टीके

इन टीकों में किसी वायरस की मदद से कोरोनावायरस के जीन्स को कोशिका में पहुंचाकर प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया उकसाई जाती है।

- ब्रिटिश-स्वीडिश कम्पनी एस्ट्रा-ज़ेनेका और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय मिलकर जो टीका विकसित कर रहे हैं उसमें चिम्पैंज़ी एडीनोवायरस ChAdOx1 का उपयोग एक वाहक के रूप में किया गया है। इसके चरण 2 व 3 के परीक्षण इंगलैंड व ब्राज़ील में जारी हैं और अक्टूबर तक इमर्जेंसी टीका मिलने की उम्मीद है।
- चीनी कम्पनी कैनसाइनो बॉयोलॉजिक्स और चीन की ही एकेडमी ऑफ मिलिट्री साइन्सेज़ के इंस्टीट्यूट ऑफ बायोलॉजी मिलकर एक एडीनोवायरस Ad5 पर आधारित टीके के विकास में लगे हैं। मई में पहली बार कोविड-19 के किसी टीके के चरण 1 के परिणाम किसी वैज्ञानिक जर्नल (*लैंसेट*) में प्रकाशित हुए थे।
- बोस्टन का बेथ इस्राइल डेकोनेस मेडिकल सेंटर बंदरों के एडीनोवायरस Ad26 पर आधारित टीके का परीक्षण कर रहा है।
- जॉनसन एंड जॉनसन ऑपरेशन वार्प स्पीड के तहत जुलाई में चरण 1 व 2 के परीक्षण शुरू करने वाला है।
- स्विस कम्पनी नोवार्टिस जीन उपचार पर आधारित टीके का उत्पादन करेगा जिसके चरण 1 के परीक्षण 2020 के अंत तक शुरू होंगे। इस टीके में एडीनो-एसोसिएटेड वायरस की मदद से कोरानावायरस के जीन के टुकड़े कोशिकाओं में पहुंचाए जाएंगे।
- मर्क नामक अमरीकी कम्पनी ने घोषणा की है कि वह वेसिकुलर स्टोमेटाइटिस वायरस से टीके का विकास करेगी। वह इसी तरीके से एबोला के खिलाफ एकमात्र स्वीकृत टीका बना चुकी है।

प्रोटीन-आधारित टीके

ये वे टीके हैं जो कोरोनावायरस के प्रोटीन या प्रोटीन-खंड की मदद से हमारे शरीर में प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया उकसाते हैं।

- मई में नोवावैक्स ने कोरोनावायरस प्रोटीन्स के अत्यंत सूक्ष्म कणों से बने टीके पर चरण 1 व 2 के परीक्षण शुरू किए।
- क्लोवर वायोफार्माश्य्यूटिकल्स ने कोरोनावायरस के एक प्रोटीन के आधार पर टीका विकसित किया है जिसका परीक्षण जंतुओं पर किया जाएगा।
- बेलर कॉलेज ऑफ मेडिसिन के शोधकर्ताओं ने 2002 की सार्स महामारी के बाद जो टीका विकसित किया था, उसी पर वे टेक्सास बाल चिकित्सालय के साथ मिलकर आगे काम कर रहे हैं क्योंकि सार्स का वायरस और नया वायरस काफी मिलते-जुलते हैं। अभी यह जंतु परीक्षण के चरण में है।
- पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय ने PittCoVacc नामक टीका विकसित किया है। यह चमड़ी पर एक पट्टी के रूप में लगाया जाता है जिसके ज़रिए वायरस-प्रोटीन शरीर में पहुंच जाता है। अभी यह जंतु परीक्षण के चरण में है।
- क्वींसलैंड विश्वविद्यालय (ऑस्ट्रेलिया) द्वारा एक परिवर्तित वायरस प्रोटीन से विकसित टीका चरण 1 में है।
- सैनोफी नामक कम्पनी ने जेनेटिक इंजीनियरिंग के ज़रिए परिवर्तित कोरोनावायरस से प्रोटीन प्राप्त करके टीके के जंतु परीक्षण शुरू किए हैं। यह वायरस कीटों के शरीर में पाला जा सकता है।

• वेक्सार्ट द्वारा विकसित टीका एक गोली के रूप में है, जिसमे विभिन्न वायरस प्रोटीन्स हैं। इसके चरण 1 के परीक्षण जल्दी ही शुरू होंगे।

संपूर्ण वायरस के टीके

इन टीकों में दुर्बलीकृत या निष्क्रिय कोरोनावायरस का उपयोग करके प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया को उकसाया जाता है।

• चीनी कम्पनी साइनोवैक निष्क्रिय किए गए कोरोनावायरस से बने टीके (CoronaVac) के चरण 1 व 2 के परीक्षण पूरे करके चरण 3 के परीक्षण की तैयारी कर रही है।

• सरकारी चीनी कम्पनी साइनोफार्म ने निष्क्रिय किए गए वायरस से बने टीके के चरण 1 व 2 का परीक्षण शुरू किया है।

• चाइनीज़ एकेडमी ऑफ मेडिकल साइन्सेज़ का इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल बायोलॉजी, जिसने पोलियो और हिपेटाइटिस-ए का टीका बनाया था, कोविड-19 के लिए निष्क्रिय वायरस आधारित टीके का चरण 1 का परीक्षण कर रहा है।

पुराने टीकों का नया उपयोग

ऐसे टीकों को उपयोग करना जो अन्य बीमारियों के लिए इस्तेमाल किए जा रहे हैं।

• टीबी के खिलाफ बीसीजी टीके का आविष्कार 1900 के दशक में हुआ था। ऑस्ट्रेलिया के मर्डोक चिल्डर्न्स रिसर्च इंस्टीट्यूट तथा कई अन्य स्थानों पर चरण 3 के परीक्षण चल रहे हैं कि क्या बीसीजी टीका कोरोनावायरस के खिलाफ कुछ सुरक्षा प्रदान करता है।

स्रोत: विश्व स्वास्थ्य संगठन, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एलर्जी एंड इंफेक्शियस डिसीज़ेस, नेशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नॉलॉजी इंफर्मेशन, न्यू इंग्लैंड जर्नल ऑफ मेडिसिन

इस अंक के चित्र निम्नलिखित स्थानों से लिए गए हैं -

Page 2 - https://static01.nyt.com/newsgraphics/2020/06/10/coronavirus-vaccine-tracker/b85343e51635d1fbdb4fa910d2dc09c634b75c1d/virus-450.png
Page 16- https://encrypted-tbn0.gstatic.com/images?q=tbn%3AANd9GcTleDfrwHXYWzIX0WyqcCUHVWmRZHc1jnEdCUhn0BCmSyK05nzK&usqp=CAU
Page 18- https://www.sciencemag.org/sites/default/files/styles/article_main_image_-_1280w__no_aspect_/public/ca_0501NID_Autism_Adulthood_online.jpg?itok=OuQloFzX
Page 20- https://live.staticflickr.com/2228/3541116911_076ea7653a_w.jpg
Page 21- https://images.newscientist.com/wp-content/uploads/2019/03/27153622/osuga-valles.jpg?width=778
Page 22- https://i.guim.co.uk/img/media/b54fd0332a522661c712c05d0730be3bc0610560/14_0_3293_1976/master/3293.jpg?width=1125&quality=85&auto=format&fit=max&s=d3c1079d17a742336d652ab4a2229b09
Page 26- https://www.indianaturewatch.net/images/album/photo/14389049114c657a45ead83.jpg
Page 30- https://www.sciencemag.org/sites/default/files/styles/article_main_image_-_1280w__no_aspect_/public/bee_1280p_1.jpg?itok=HhAf10oI
Page 31- https://2.bp.blogspot.com/-iUQBjmMmWaM/ThCYSwFAsUI/AAAAAAAABAQ/9Z5i2xX6A3Q/s1600/Snake-Rituals1-7868.jpg
Page 32- https://encrypted-tbn0.gstatic.com/images?q=tbn%3AANd9GcRskmpCTwfmyiOSI6u-JupmGav-CN1h0W6AIfxFs-1Jvl4bQXZQ&usqp=CAU
Page 35- https://www.sciencemag.org/sites/default/files/styles/article_main_large/public/goat_1280p.jpg?itok=43OfdiB9
Page 36- https://cdn.images.express.co.uk/img/dynamic/151/590x/Venus-fly-trap-766156.jpg

महामारी का अंत कैसे होगा

कोरोनावायरस वुहान के नज़दीक पाए जाने वाले चमगादड़ की एक प्रजाति से किसी तरह एक अन्य मध्यवर्ती प्रजाति से मनुष्यों में प्रवेश कर गया। लेकिन अभी तक किसी को नहीं पता कि यह महामारी खत्म कैसे होगी। अलबत्ता, पूर्व की महामारियों से भविष्य के संकेत मिलते हैं। युनिवर्सिटी ऑफ शिकागो की महामारीविद और जीवविज्ञानी सारा कोबे और अन्य विशेषज्ञों के अनुसार पूर्व के अनुभवों से पता चलता है कि आने वाला समय इस बात पर निर्भर करता है कि रोगाणु का विकास किस तरह होता है और उस पर मनुष्यों की जैविक और सामाजिक दोनों तरह की प्रतिक्रिया क्या रहती है।

वास्तव में वायरस निरंतर उत्परिवर्तित होते रहते हैं। किसी भी महामारी को शुरू करने वाले वायरस में इतनी नवीनता होती है कि मानव प्रतिरक्षा प्रणाली उन्हें जल्दी पहचान नहीं पाती। ऐसे में बहुत ही कम समय में बड़ी संख्या में लोग बीमार हो जाते हैं। भीड़भाड़ और दवा की अनुपलब्धता जैसे कारणों के चलते इस संख्या में काफी तेज़ी से वृद्धि होती है। अधिकतर मामलों में तो प्रतिरक्षा प्रणाली द्वारा विकसित एंटीबॉडीज़ लंबे समय तक बनी रहती हैं, प्रतिरक्षा प्रदान करती हैं और व्यक्ति से व्यक्ति में संक्रमण को रोक देती हैं। लेकिन इस तरह के परिवर्तनों में कई साल लग जाते हैं, तब तक वायरस तबाही मचाता रहता है। पूर्व की महामारियों के कुछ उदाहरण देखते हैं।

रोग के साथ जीवन

आधुनिक इतिहास का एक उदाहरण 1918-1919 का एच1एन1 इन्फ्लुएंज़ा प्रकोप है। उस समय डॉक्टरों और प्रशासकों के पास आज के समान साधन उपलब्ध नहीं थे और स्कूल बंद करने जैसे नियंत्रण उपायों की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती थी कि उन्हें कितनी जल्दी लागू किया जाता है। लगभग 2 वर्ष और महामारी की 3 लहरों ने 50 करोड़ लोगों को संक्रमित किया था और लगभग 5 से 10 करोड़ लोग मारे गए थे। यह तब समाप्त हुआ था जब संक्रमण से उबर गए लोगों में प्राकृतिक रूप से प्रतिरक्षा पैदा हो गई।

इसके बाद भी एच1एन1 स्ट्रेन कुछ हल्के स्तर पर 40 वर्षों तक मौसमी वायरस के रूप में मौजूद रहा। और 1957 में एच2एन2 स्ट्रेन की एक महामारी ने 1918 के अधिकांश स्ट्रेन को खत्म कर दिया। एक वायरस ने दूसरे को बाहर कर दिया। वैज्ञानिक नहीं जानते कि ऐसा कैसे हुआ। प्रकृति कर सकती है, हम नहीं।

कंटेनमेंट

2003 की सार्स महामारी का कारण कोरोनावायरस SARS-CoV था। यह वर्तमान महामारी के वायरस (SARS-CoV2) से काफी निकटता से सम्बंधित था। उस समय की आक्रामक रणनीतियों, जैसे रोगियों को आइसोलेट करने, उनसे संपर्क में आए लोगों को क्वारेंटाइन करने और सामाजिक नियंत्रण से इस रोग को हांगकांग और टोरंटो के कुछ इलाकों तक सीमित कर दिया गया था।

गौरतलब है कि यह कंटेनमेंट इसलिए सफल रहा था क्योंकि इस वायरस के लक्षण काफी जल्दी नज़र आते थे और यह वायरस केवल अधिक बीमार व्यक्ति से ही किसी अन्य व्यक्ति को संक्रमित कर सकता था। अधिकांश मरीज़ लक्षण प्रकट होने के एक सप्ताह बाद ही संक्रामक होते थे। यानी यदि लक्षण प्रकट होने के बाद उस व्यक्ति को अलग-थलग कर दिया जाता तो संक्रमण आगे नहीं फैलता था। कंटेनमेंट का तरीका इतना कामयाब रहा कि इसके मात्र 8098 मामले सामने आए और सिर्फ 774 लोगों की ही मौत हुई। 2004 से लेकर आज तक इसका कोई और मामला सामने नहीं आया है।

टीका

विशेषज्ञों के अनुसार 2009 में स्वाइन फ्लू का वायरस 1918 के एच1एन1 वायरस के समान ही था। हम काफी भाग्यशाली रहे कि इसकी संक्रामक और रोगकारी क्षमता बहुत कम थी और छह माह के अंदर ही इसका टीका विकसित कर लिया गया था।

गौरतलब है कि खसरा या चेचक के टीके के विपरीत,

फ्लू के टीके कुछ वर्षों तक ही सुरक्षा प्रदान करते हैं। इन्फ्लुएंज़ा वायरस जल्दी-जल्दी उत्परिवर्तित होते रहते हैं, और इसलिए इनके टीकों को भी हर साल अद्यतन करने और नियमित रूप से लगाने की ज़रूरत होती है।

वैसे महामारी के दौरान अल्पकालिक टीके भी काफी महत्वपूर्ण होते हैं। 2009 के वायरस के खिलाफ विकसित टीके ने अगले जाड़ों में इसके पुनः प्रकोप को काफी कमज़ोर कर दिया था। टीके की बदौलत ही 2009 का वायरस ज़्यादा तेज़ी से 1918 के वायरस की नियति को प्राप्त हो गया। जल्दी ही इसे मौसमी फ्लू के रूप में जाना जाने लगा जिसके विरुद्ध अधिकतर लोग संरक्षित हैं - फ्लू के टीके से या पिछले संक्रमण से उत्पन्न एंटीबॉडी द्वारा।

वर्तमान महामारी

वर्तमान महामारी की समाप्ति को लेकर फिलहाल तो अटकलें ही हैं लेकिन अनुमान है कि इस बार पूर्व की महामारियों में उपयोग किए गए सुरक्षा के सभी तरीकों की भूमिका होगी - मोहलत प्राप्त करने के लिए सामाजिक-नियंत्रण, लक्षणों से राहत पाने के लिए नई एंटीवायरल दवाइयां और टीका।

सामाजिक दूरी जैसे नियंत्रण के उपाय कब तक जारी रखने होंगे यह तो लोगों पर निर्भर करता है कि वे कितनी सख्ती से इसका पालन करते हैं और सरकारों पर निर्भर करता है कि वे कितनी मुस्तैदी से प्रतिक्रिया देती हैं। कोबे का कहना है कि इस महामारी का नाटक 50 प्रतिशत तो सामाजिक व राजनैतिक है। शेष आधा विज्ञान का है।

इस महामारी के चलते पहली बार कई शोधकर्ता एक साथ मिलकर, कई मोर्चों पर इसका उपचार विकसित करने पर काम कर रहे हैं। यदि जल्दी ही कोई एंटीवायरल दवा विकसित हो जाती है तो गंभीर रूप से बीमार होने वाले लोगों या मृत्यु की संख्याओं को कम किया जा सकेगा।

स्वस्थ हो चुके रोगियों में SARS-CoV2 को निष्क्रिय करने वाली एंटीबॉडीज़ की जांच तकनीक से भी काफी फायदा मिल सकता है। इससे महामारी खत्म तो नहीं होगी लेकिन गंभीर रूप से बीमार रोगियों के उपचार में एंटीबॉडी युक्त रक्त का उपयोग किया जा सकता है। ऐसी जांच के बाद वे लोग काम पर लौट सकेंगे जो इस वायरस को झेलकर प्रतिरक्षा विकसित कर पाए हैं।

संक्रमण को रोकने के लिए टीके की आवश्यकता होगी जिसमें अभी भी लगभग 1 साल का समय लग सकता है। एक बात स्पष्ट है कि टीका बनाना संभव है। और फ्लू के वायरस की अपेक्षा SARS-CoV2 का टीका बनाना आसान होगा क्योंकि यह कोरोनावायरस है और इनके पास मानुष्य की कोशिकाओं के साथ संपर्क करके अंदर घुसने के रास्ते बहुत कम होते हैं। वैसे यह खसरे के टीके की तरह दीर्घकालिक प्रतिरक्षा प्रदान तो नहीं करेगा लकिन फिलहाल तो कोई भी टीका मददगार होगा।

जब तक दुनिया के हर स्वस्थ व्यक्ति को टीका नहीं लग जाता, कोविड-19 स्थानीय महामारी बना रहेगा। यह निरंतर प्रसारित होता रहेगा और मौसमी तौर पर लोगों को बीमार भी करता रहेगा, कभी-कभार गंभीर रूप से। अधिक समय तक बना रहा तो यह बच्चों को छुटपन में ही संक्रमित करने लगेगा। बचपन में बहुत गंभीर लक्षण प्रकट नहीं होते और ऐसा देखा जाता है कि बचपन में संक्रमित बच्चे वयस्क अवस्था में फिर से संक्रमित होने पर उतने गंभीर बीमार नहीं होते। अधिकांश लोग टीकाकरण और प्राकृतिक प्रतिरक्षा के मिले-जुले प्रभाव से सुरक्षित रहेंगे। लेकिन अन्य वायरसों की तरह SARS-CoV2 भी लंबे समय तक हमारे बीच रहेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

वार्षिक सदस्यता

व्यक्तिगत 300 रुपए संस्थागत 300 रुपए

कोविड-19: वैकल्पिक समाधान

भारत डोगरा

विश्व स्तर पर कोविड-19 के कारण कई देशों में लॉकडाउन लगने व इस कारण बढ़ते आजीविका संकट व अन्य समस्याओं को ध्यान में रखते हुए भारत सहित विश्व के कई वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने इस वैश्विक संकट का सामना करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण वैकल्पिक सुझाव दिए हैं।

आठ वरिष्ठ भारतीय वैज्ञानिकों ने प्रतिष्ठित *इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च* में एक समीक्षा लेख *कोविड-19 पेंडेमिक - ए रिव्यू ऑफ दी करंट एविडेंस* शीर्षक से लिखा है। इन वैज्ञानिकों में डॉ. प्रणब चटर्जी, नाजिया नागी, अनूप अग्रवाल, भाबातोश दास, सयंतन बनर्जी, स्वरूप सरकार, निवेदिता गुप्ता और रमन आर. गंगाखेड़कर शामिल हैं। सभी आठ वैज्ञानिक प्रमुख संस्थानों से जुड़े हैं। यह समीक्षा लेख वैश्विक संदर्भ में लिखा गया है व विकासशील देशों की स्थितियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है।

ऊपर से आए आदेशों पर आधारित समाधान के स्थान पर इस समीक्षा लेख ने समुदाय आधारित, जन-केंद्रित उपायों में अधिक विश्वास जताया है। लॉकडाउन आधारित समाधान को एक अतिवादी सार्वजनिक स्वास्थ्य का कदम बताते हुए इस समीक्षा लेख ने कहा है कि इसके लाभ तो अभी अनिश्चित हैं, पर इसके दीर्घकालीन नकारात्मक असर को कम नहीं आंकना चाहिए। ऐसे अतिवादी कदमों का सभी लोगों पर सामाजिक, मनौवैज्ञानिक व आर्थिक तनाव बढ़ाने वाला असर पड़ सकता है जिसका स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल असर पड़ेगा। अतः ऊपर के आदेशों से जबरन लागू किए गए क्वारंटाइन के स्थान पर समुदायों व सिविल सोसायटी के नेतृत्व में होने वाले क्वारंटाइन व मूल्यांकन की दीर्घकालीन दृष्टि से कोविड-19 जैसे पेंडेमिक के समाधान में अधिक सार्थक भूमिका है।

आगे इस समीक्षा लेख ने कहा है कि ऊपर से लगाए प्रतिबंधों के अर्थव्यवस्था, कृषि व मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल दीर्घकालीन असर बाद में सामने आ सकते हैं। अंतर्राष्ट्रीय पब्लिक हेल्थ इमरजेंसी के तकनीकी व चिकित्सा समाधानों पर ध्यान केंद्रित करते हुए स्वास्थ्य व्यवस्थाओं को मज़बूत करने व समुदायों की क्षमता मज़बूत करने के जन केंद्रित उपायों पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। इन वैज्ञानिकों ने कोविड-19 की विश्व स्तर की प्रतिक्रिया को कमज़ोर और अपर्याप्त बताते हुए कहा है कि इससे वैश्विक स्वास्थ्य व्यवस्थाओं की तैयारी की कमज़ोरियां सामने आई हैं व पता चला है कि विश्व स्तर के संक्रामक रोगों का सामना करने की तैयारी अभी कितनी अधूरी है। इस समीक्षा लेख ने कहा है कि कोविड-19 का जो रिस्पांस विश्व स्तर पर सामने आया है वह मुख्य रूप से एक प्रतिक्रिया के रूप में है व पहले की तैयारी विशेष नज़र नहीं आती है। शीघ्र चेतावनी की विश्वसनीय व्यवस्था की कमी है। अलर्ट करने व रिस्पांस व्यवस्था की कमी है। आइसोलेशन की पारदर्शी व्यवस्था की कमी है। इसके लिए सामुदायिक तैयारी की कमी है। ऐसी हालत में खतरनाक संक्रामक रोगों का सामना करने की तैयारी को बहुत कमज़ोर ही माना जाएगा।

इन वैज्ञानिकों ने कहा है कि अब आगे के लिए विश्व को संक्रामक रोगों से अधिक सक्षम तरीके से बचाना है तो हमें ऐसी तैयारी करनी होगी जो केवल प्रतिक्रिया आधारित न हो अपितु पहले से व आरंभिक स्थिति में खतरे को रोकने में सक्षम हो। यदि ऐसी तैयारी विकसित होगी तो लोगों की कठिनाइयों व समस्याओं को अधिक बढ़ाए बिना समाधान संभव होगा। इस समीक्षा लेख में दिए गए सुझाव निश्चय ही महत्वपूर्ण है व इन पर चर्चा भी हो रही है। मौजूदा नीतियों को सुधारने में ये सुझाव महत्वपूर्ण हैं। जन-केंद्रित, समुदाय आधारित नीतियां अपनाकर बहुत-सी हानियों और क्षतियों से बचा जा सकता है।

जर्मनी के इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल माइक्रोबॉयोलॉजी एंड हाइजीन के प्रतिष्ठित वैज्ञानिक डा. सुचरित भाकड़ी ने हाल ही में जर्मन चांसलर एंजेला मर्केल को एक खुला पत्र

लिखा है जिसमें उन्होंने कोविड-19 के संक्रमण से निबटने के उपायों पर अति शीघ्र पुनः विचार करने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया है। उन्होंने अपने पत्र में कहा है कि बहुत घबराहट की स्थिति में जो बहुत कठोर कदम उठाए गए हैं उनका वैज्ञानिक औचित्य ढूंढ पाना कठिन है। मौजूदा आंकड़ों पर सवाल उठाते हुए उन्होंने कहा है कि किसी मृत व्यक्ति में कोविड-19 के वायरस की उपस्थिति मात्र के आधार पर इसे ही मौत का कारण मान लेना उचित नहीं है।

इससे पहले वैश्विक संदर्भ में बोलते हुए उन्होंने कहा कि कोविड-19 के विरुद्ध जो बेहद कठोर कदम उठाए गए हैं उनमें से कुछ बेहद असंगत, विवेकहीन और खतरनाक हैं जिसके कारण लाखों लोगों की अनुमानित आयु कम हो सकती है। इन कठेर कदमों का विश्व अर्थव्यवस्था पर बहुत प्रतिकूल असर हो रहा है जो अनगनित व्यक्तियों के जीवन पर बहुत बुरा असर डाल रहा है। स्वास्थ्य देखभाल पर इन कठोर उपायों के गहन प्रतिकूल प्रभाव पड़े हैं। पहले से गंभीर रोगों से ग्रस्त मरीज़ों की देखभाल में कमी आ गई है या उन्हें बहुत उपेक्षा का सामना करना पड़ रहा है। उनके पहले से तय ऑपरेशन टाल दिए गए हैं व ओपीडी बंद कर दिए गए हैं।

येल युनिवर्सिटी प्रिवेंशन रिसर्च सेंटर के संस्थापक-निदेशक डा. डेविड काट्ज़ ने *न्यूयार्क टाइम्स* में 20 मार्च 2020 को प्रकाशित लेख *इज़ अवर फाइट अगेंस्ट कोरोना वायरस वर्स देन द डिसीज़?* में कहा है कि "मेरी गहन चिंता है कि सामाजिक व आर्थिक स्तर पर एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य पर बहुत गंभीर प्रभाव पड़ रहा है और सामान्य जीवन लगभग समाप्त हो गया है, स्कूल व बिज़नेस बंद हैं, अनेक अन्य बड़े प्रतिबंध हैं - इसका कुप्रभाव लंबे समय तक ऐसा नुकसान करेगा जो वायरस से होने वाली मौतों से बहुत ज़्यादा होगा। बेरोज़गारी, निर्धनता और निराशा से जन स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।"

सेंटर फॉर इन्फेक्शियस डिसीज़ रिसर्च एंड पॉलिसी, मिनेसोटा विश्वविद्यालय के निदेशक मिशेल टी. आस्टरहोम ने *वाशिंगटन पोस्ट* में 21 मार्च 2020 के *फेसिंग कोविड-19 रिएलिटी - ए नेशनल लॉकडाउन इज़ नो क्योर* में कहा है कि "यदि हम सब कुछ बंद कर देंगे तो बेरोज़गारी बढ़ेगी, डिप्रेशन आएगा, अर्थव्यस्था लड़खड़ाएगी। वैकल्पिक समाधान यह है कि एक ओर संक्रमण का कम जोखिम रखने वाले व्यक्ति अपना कार्य करते रहें, व्यापार एवं औद्योगिक गतिविधियों को जितना संभव हो चलते रहने दिया जाए लेकिन जो व्यक्ति संक्रमण की दृष्टि से ज़्यादा जोखिम की स्थिति में हैं वे सामाजिक दूरी बनाए रखने जैसी तमाम सावधानियां अपना कर अपनी रक्षा करें। इसके साथ स्वास्थ्य व्यवस्था की क्षमताओं को बढ़ाने की तत्काल ज़रूरत है। इस तरह हम धीरे-धीरे प्रतिरोधक क्षमता का विकास भी कर पाएंगे और हमारी अर्थव्यवस्था भी बनी रहेगी जो हमारे जीवन का आधार है।"

जर्मन मेडिकल एसोशिएसन के पूर्व अध्यक्ष डॉ. फ्रेंक उलरिक मोंटगोमेरी ने कहा है, "मैं लॉकडाउन का प्रशंसक नहीं हूं। जो कोई भी इसे लागू करता है उसे यह भी बताना चाहिए कि पूरी व्यवस्था कब इससे बाहर निकलेगी। चूंकि हमें मानकर यह चलना है कि यह वायरस तो हमारे साथ लंबे समय तक रहेगा, अतः मेरी चिंता है कि हम कब सामान्य जीवन की ओर लौट सकेंगे।"

वर्ल्ड मेडिकल एसोशिएसन के पूर्व अध्यक्ष डॉ. लियोनिद इडेलमैन ने हाल ही में वर्तमान संकट के संदर्भ में कहा कि सम्पूर्ण लॉकडाउन से फायदे की अपेक्षा नुकसान अधिक होगा। यदि अर्थव्यवस्था बाधित होगी तो बेशक स्वास्थ्य रक्षा के संसाधनों में भी कमी आएगी। इस तरह समग्र स्वास्थ्य व्यवस्था को फायदे की जगह नुकसान ही होगा।

जाने-माने वैज्ञानिकों के इन बयानों का एक विशेष महत्व यह है कि अति कठोर उपायों के स्थान पर ये हमें संतुलित समाधान की राह दिखाते हैं। विशेषकर समुदाय आधारित व जन-केंद्रित समाधानों के जो सुझाव हैं वे बहुत महत्वपूर्ण हैं और उन पर अधिक ध्यान देना चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***

पारंपरिक विश्वास और आज का विज्ञान

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

कुछ दिनों पहले राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा अभियान के केंद्रीय प्रभारी मंत्री ने भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (ICMR) से संपर्क करके यह सुझाव दिया था कि परिषद कोरोनावायरस के संक्रमण (कोविड-19) के इलाज में गंगाजल के उपयोग पर शोध करे। इस पर भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने स्पष्ट किया कि इस सम्बंध में उपलब्ध डैटा इतना पुख्ता नहीं है कि इसके नैदानिक परीक्षण शुरू किए जा सकें और इस प्रस्ताव को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया - क्या बात है!

लाखों लोग गंगा नदी को दुनिया की सबसे पवित्र और पूजनीय नदी मानते हैं। समुद्र तल से 3.9 कि.मी. या 13,000 फीट की ऊंचाई पर स्थित, हिमालय के गंगोत्री ग्लेशियर के गौमुख से निकलने के बाद, रास्ते में कई धाराओं का जल अपने में समाहित करते हुए, हरिद्वार के पास देवप्रयाग में आकर यह गंगा नदी कहलाती है। गंगा उत्तर भारत के मैदानी इलाकों - उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल से होते हुए 2525 किलोमीटर की दूरी तय कर बंगाल की खाड़ी में मिल जाती हैं। गंगा के किनारे बसे लोग (ज़्यादातर हिंदू, लेकिन कुछ अन्य भी) इसे पूजते हैं, इसमें स्नान करते हैं, और पूजा और अन्य धार्मिक कार्यों के लिए इसका जल अपने घरों में रखते हैं (गंगाजल विदेशों में बेचा भी जाता है जैसे कैलिफोर्निया की भारतीय दुकानों में मैंने खुद देखा है)। गंगा मैया के प्रति लोगों की श्रद्धा और भक्ति ऐसी ही है।

पवित्र और अपवित्र

यह दुर्भाग्य है कि सदियों से हरिद्वार क्षेत्र में ही मानव अवशिष्ट निपटान और व्यवसायिक कारणों से गंगा का जल प्रदूषित होता जा रहा है। *एप्लाइड वॉटर साइंस* पत्रिका में आर. भूटानिया और उनके साथियों ने 2016 में *जल गुणवत्ता सूचकांक के संदर्भ में हरिद्वार में गंगा नदी के पारिस्थितिकी तंत्र का आकलन* शीर्षक से एक शोध पत्र प्रकाशित किया था, जिसे पढ़कर निराशा ही होती है। गंगा के प्रदूषण पर सबसे ताज़ा अध्ययन *न्यूयॉर्क टाइम्स* के 23 दिसंबर 2019 के अंक में प्रकाशित हुआ था। इस आलेख में आईआईटी दिल्ली के शोधकर्ताओं द्वारा गंगा के संदूषण और इसमें हानिकारक बैक्टीरिया, जो वर्तमान में उपयोग की जाने वाली एंटीबयोटिक दवाइयों के प्रतिरोधी भी हैं, की उपस्थिति के बारे में प्रस्तुत रिपोर्ट का सार प्रस्तुत किया गया है। दूसरे शब्दों में, जहां से गंगा बहना शुरू होती है ठेठ वहीं से इसका जल (*गंगाजल*) मानव और पशु स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। जैसे-जैसे यह आगे बहती है कारखानों से निकलने वाला औद्योगिक कचरा इसमें डाल दिया जाता है, जिससे इसके पानी की गुणवत्ता और सुरक्षा और भी कम हो जाती है। और, हाल ही में पुण्य नगरी वाराणसी की एक रिपोर्ट कहती है कि वर्तमान लॉकडाउन के दौरान गंगा नदी के जल की गुणवत्ता में 40-50 प्रतिशत सुधार हुआ है (*इंडिया टुडे*, 6 अप्रैल 2020)।

हमने यह लौकिक अनाचार होने कैसे दिया? निश्चित रूप से, गंगा जल का उपयोग करने वाले अधिकतर लोग श्रद्धालु हैं; यहां तक कि कई उद्योगों के प्रमुख या मालिक भी गंगा को पवित्र मानते होंगे। और तो और, समय-समय पर इसके जल का पूजा में उपयोग करते होंगे। लेकिन फिर भी वे इसे प्रदूषित करते हैं। (यहां यह ज़रूरी नहीं कि 'लौकिक' शब्द इन लोगों के विश्वास को नकारता है बल्कि यह लोगों के सांसारिक सरोकार दर्शाता है, और यह 'अच्छाई बनाम बुराई' या 'देवता बनाम शैतान' का मामला नहीं है)। दरअसल, 'इससे मुझे क्या फायदा होगा' वाला रवैया लोकाचार की दृष्टि से (और शायद नैतिक रूप से भी) गलत है। इस दोहरेपन के चलते लगता नहीं कि गंगा

मैया का भविष्य स्वच्छ और सुरक्षित है।

डॉल्फिन-घड़ियाल से सीख

वापस विज्ञान पर आते हैं। जैसा कि उल्लेख है गंगा में अत्यधिक ज़हरीले रोगाणु (और हानिकारक रासायनिक अपशिष्ट) मौजूद हैं, लेकिन आश्चर्य की बात है कि इसमें रहने वाली मछलियों की 140 प्रजातियां, उभयचरों की 90 प्रजातियां, सरीसृप, पक्षी, और गंगा नदी की प्रसिद्ध डॉल्फिन और घड़ियाल (मछली खाने वाले मगरमच्छ) इस प्रदूषित पानी का सामना कर पाते हैं, खासकर अब, जब यह कोविड-19 वायरस से भी संदूषित है। क्या उनके पास विशेष प्रतिरक्षा है, और क्या वे ऐसे रोगजनकों से लड़ने के लिए इनके खिलाफ एंटीबॉडी बनाते हैं? यह एक ऐसा मुद्दा है जिसका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाना चाहिए और इसे मानव की रक्षा के लिए अपनाया जाना चाहिए।

ऐसे ही कुछ दिलचस्प अवलोकन लामा, ऊंट और शार्क जैसे जानवरों की प्रतिरक्षा के अध्ययनों में सामने आए हैं। *साइंस* पत्रिका के 1 मई 2020 के अंक में मिच लेसली बताते हैं कि जीव विज्ञानियों ने लामा के रक्त और आणविक सुपरग्लू की मदद से वायरस से लड़ने का एक नया तरीका खोजा है। यह देखा गया है कि लामा, ऊंट और शार्क की प्रतिरक्षा कोशिकाएं लघु एंटीबॉडी छोड़ती हैं जो सामान्य एंटीबॉडी से लगभग आधी साइज़ की होती हैं। मुख्य बात यह है कि ये जानवर लघु एंटीबॉडी बनाते हैं जिन्हें प्रयोगशाला में आसानी से संश्लेषित किया जा सकता है और वायरस के खिलाफ हथियार के रूप में उपयोग किया जा सकता है। इस बारे में विस्तार से बताता एक शोध पत्र हाल ही में *सेल* पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। डॉल्फिन के संदर्भ में सी. सेंटलेग और उनके साथियों का पेपर अधिक प्रासंगिक है। यह अध्ययन भूमध्यसागर और अटलांटिक सागर के केनेरी द्वीप के डॉल्फिन्स पर किया गया है। भूमध्य सागर अत्यधिक प्रदूषित है जबकि केनरी द्वीप का पानी शुद्ध है।

मुझे लगता है कि हम इन अध्ययनों से सीख सकते हैं। गंगा नदी की डॉल्फिन और घड़ियालों पर शोध करके उनकी लघु-एंटीबॉडी की पहचान कर सकते हैं, उन्हें लैब में संश्लेषित कर सकते हैं, और इन्हें कोविड-19 और ऐसे अन्य वायरसों से मनुष्य की सुरक्षा के लिए अपना सकते हैं। हैदराबाद स्थित डिपार्टमेंट ऑफ बायोटेक्नॉलॉजी प्रयोगशाला, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एनिमल बायोटेक्नोलॉजी में यह शोध किया सकता है।

संगम कैसे हो

उपरोक्त मंत्री के विपरीत आयुष मंत्रालय के प्रभारी मंत्री का अनुरोध है कि अश्वगंधा, मुलेठी, गिलोय और पॉलीहर्बल औषधि (जिसे आयुष 64 कहते हैं) की कोविड-19 के खिलाफ रोग-निरोधन की प्रभाविता जांचने के लिए एक नियंत्रित रैंडम अध्ययन करवाया जाए। यह अध्ययन किया जाना चाहिए क्योंकि पर्याप्त प्रमाण हैं कि पारंपरिक जड़ी-बूटियों और पादप रसायनों में चिकित्सकीय गुण होते हैं, और दवा कंपनियां उनके सक्रिय रसायनों को खोजकर, संश्लेषित करके उपयोग करती हैं। बहुविद एम. एस. वलियाथन पिछले दो दशकों से आयुर्वेद चिकित्सकों, जैव रसायनविदों, कोशिका जीव विज्ञानियों, आनुवंशिकीविदों और नैनोप्रौद्योगिकीविदों के साथ मिलकर आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करके पारंपरिक औषधियों के प्रभावों को परखने का काम कर रहे हैं। (जैसे आप उनका 1 मार्च 2016 के *प्रोसीडिंग्स ऑफ दी इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी* में प्रकाशित पदक व्याख्यान 'आयुर्वेदिक जीव विज्ञान : पहला दशक' पढ़ सकते हैं। इसमें वे आधुनिक विज्ञान की मदद से आयुर्वेद पर किए गए प्रयोगों, और उनके प्रमाणित परिणामों के बारे में बताते हैं।) 2012 में *प्लॉस वन* पत्रिका में वी. द्विवेदी का ऐसा ही एक पेपर *ड्रॉसोफिला मेलानोगास्टर मॉडल पर पारंपरिक आयुर्वेदिक औषधियों के प्रभावों का चिकित्सीय अनुप्रयोगों से सम्बंध* प्रकाशित हुआ था। तो इस तरह से परंपरा और आज के विज्ञान का संगम संभव, वे साथ आ सकते हैं।

आयुष शायद कोविड-19 से लड़ सकता है, गंगा जल तो मात्र इसे धारण कर सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

कोविड-19 से उत्पन्न छः संकट

रामचंद्र गुहा

आज़ादी के बाद से ही भारत कई मुश्किल दौर से गुज़रा है। भारत ने विभाजन की पीड़ा; 1960 के दशक का अकाल और युद्ध; 1970 के दशक में इंदिरा गांधी का आपातकाल; और 1980 के दशक के अंत एवं 1990 की शुरुआत में सांप्रदायिक दंगों का दर्द झेला है। हमारा देश एक बार फिर अब तक के सबसे चुनौतीपूर्ण दौर से गुज़र रहा है। कारण यह है कि कोविड-19 महामारी ने कम से कम छह अलग-अलग संकटों को जन्म दिया है।

- चिकित्सा सम्बंधी संकट
- आर्थिक संकट
- सामाजिक/मानवीय संकट
- मनोवैज्ञानिक संकट
- लोकतंत्र का संकट

सबसे पहला और सबसे प्रत्यक्ष संकट चिकित्सा सम्बंधी है। जैसे-जैसे वायरस संक्रमण के मामले बढ़ेंगे, हमारे पहले से कमज़ोर और अति-व्यस्त स्वास्थ्य तंत्र पर और अधिक दबाव पड़ेगा। ऐसे समय में, महामारी से निपटने के प्रबंधन पर अत्यधिक ध्यान देने का मतलब होगा कि अन्य प्रमुख स्वास्थ्य समस्याएं उपेक्षित रह जाएंगी। टीबी, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप और कई अन्य रोगों से पीड़ित करोड़ों भारतीयों को पता चल रहा है कि इलाज के लिए डॉक्टर/अस्पताल मिलना मुश्किल है, जो पहले उपलब्ध थे। इससे अधिक चिंता तो भारत में हर माह पैदा होने वाले लाखों शिशुओं की है। कई वर्षों की मेहनत से शिशुओं को खसरा, मम्स, पोलियो, डिप्थीरिया जैसी घातक बीमारियों के विरुद्ध टीकाकरण का एक संस्थागत ढांचा तैयार किया गया था। लेकिन हालिया ज़मीनी रिपोर्ट्स से पता चला है कि कोविड-19 की ओर अधिक ध्यान होने से राज्य सरकारें बच्चों के टीकाकरण कार्यक्रमों में पिछड़ रही हैं।

दूसरा और स्पष्ट संकट आर्थिक संकट है। महामारी ने कपड़ा, एयरलाइन्स, पर्यटन और आतिथ्य उद्यमों जैसे रोज़गार पैदा करने वाले उद्योगों को गंभीर नुकसान पहुंचाया है। इस तालाबंदी का अनौपचारिक क्षेत्र पर और भी अधिक प्रभाव पड़ा होगा। कई हज़ारों लाखों मज़दूरों, पथ-विक्रेताओं और दस्तकारों का रोज़गार छिन गया है। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकॉनॉमी का अनुमान है कि मार्च की शुरुआत में जो बेरोज़गारी दर 7 फीसदी थी वह अब 27 फीसदी से अधिक हो गई है। पश्चिमी युरोप के अमीर और बेहतर प्रबंधित देशों में बेरोज़गार लोगों को इस संकट से निपटने के लिए पर्याप्त वित्तीय राहत प्रदान की जा रही है। वहीं दूसरी ओर, हमारे गरीब और खराब ढंग प्रबंधित गणराज्य में राज्य द्वारा निराश्रित लोगों की बहुत ही कम सहायता की जाती है।

हमारे सामने तीसरा सबसे बड़ा संकट मानवीय संकट है। इस महामारी को परिभाषित करने वाली छवियां वे फोटो और वीडियो होंगे जिनमें प्रवासी मज़दूर अपने पैतृक गांव या कस्बों तक पहुंचने के लिए सैकड़ों मील की दूरी पैदल तय करते दिख रहे हैं। महामारी की गंभीरता को देखते हुए शायद एक अस्थायी राष्ट्रव्यापी तालाबंदी तो अनिवार्य थी लेकिन इसकी योजना ज़्यादा अकलमंदी से बनाई जानी चाहिए थी। हालात की थोड़ी-बहुत समझ रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह जानता है कि लाखों भारतीय प्रवासी कामगार हैं जो एक बेहतर ज़िंदगी के लिए अपने परिवारों से दूर रहकर काम कर रहे हैं। पता नहीं यह तथ्य प्रधानमंत्री या उनके सलाहकारों की नज़रों में क्यों नहीं आया। यदि देश के नागरिकों को ट्रेनों और बसों की मौजूदा सुव्यवस्थित प्रणाली के साथ एक हफ्ते (न कि 4 घंटे) का समय दिया जाता तो वे सुरक्षा और सहजता से अपने घर पहुंच जाते।

जैसा कि विशेषज्ञों ने स्पष्ट किया है, तालाबंदी की उपयुक्त योजना बनाने में विफलता ने जन स्वास्थ्य संकट को बढ़ाया है। बेरोज़गार श्रमिकों को मार्च के शुरू में ही अपने-अपने घर लौटने की अनुमति दी जानी चाहिए थी। उस समय वायरस के वाहकों की संख्या बहुत कम थी।

लेकिन अब दो महीने के बाद केंद्र सरकार द्वारा ट्रेनों को दोबारा से शुरू करने से हज़ारों वायरस-वाहक अपने गृह-ज़िलों में वायरस ले जाएंगे।

वास्तव में यह मानवीय संकट एक व्यापक सामाजिक संकट का हिस्सा है जिसका देश आज सामना कर रहा है। कोविड-19 से काफी पहले से ही भारतीय समाज वर्ग और जाति के आधार पर बंटा ही था, धर्म को लेकर भी काफी पूर्वाग्रह से ग्रस्त था। महामारी और इसके कुप्रबंधन ने इन विभाजनों को और बढ़ावा दिया है। पहले से ही आर्थिक रूप से वंचित लोगों पर इन कष्टों का बोझ अनुपात से अधिक पड़ा है। इसी दौरान, सत्तारूढ़ दल के सांसदों (और चिंताजनक रूप से वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों) द्वारा कोविड-19 मामलों का धार्मिक चित्रण करने से भारत के पहले से ही कमज़ोर मुस्लिम अल्पसंख्यक और भी असुरक्षित महसूस करने लगे हैं। एक ओर तो मुसलमानों पर दोषारोपण बेरोकटोक चलता रहा और इस मुद्दे पर प्रधानमंत्री चुप रहे। खाड़ी देशों की तीखी आलोचना के बाद ही उन्होंने एक बयान जारी कर कहा कि यह वायरस किसी धर्म के बीच फर्क नहीं करता। लेकिन उस समय तक सत्तारूढ़ दल और उसके 'पालतू मीडिया' द्वारा फैलाया गया ज़हर आम भारतीयों की चेतना में गहराई से घर बना चुका था।

चौथा संकट पहले के तीन संकटों की तरह स्पष्ट तो नहीं है फिर भी यह काफी गंभीर हो सकता है। यह एक उभरता हुआ मनोवैज्ञानिक संकट है। बेरोज़गार और अपने घरों के लिए पैदल निकलने के लिए मजबूर लोगों में शायद ही छोड़े गए शहरों में वापस जाने का हौसला पैदा हो पाए। एक बड़ी चिंता स्कूली बच्चों और कॉलेज के छात्रों पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभाव की है जिनका सामना आने वाले महीनों में उनको स्वयं करना है। आर्थिक असुरक्षा के कारण वयस्कों में भी अवसाद और अन्य मानसिक बीमारियों में वृद्धि हो सकती है। इसके परिणाम स्वयं उनके लिए और उनके परिवार के लिए काफी गंभीर हो सकते हैं।

पांचवां संकट भारत के संघीय ढांचे का कमज़ोर होना है। आपदा प्रबंधन अधिनियम के आधार पर केंद्र को स्वयं में अत्यधिक शक्तियों को केंद्रित करने की अनुमति मिल गई है। कम से कम महामारी के शुरुआती महीनों में, राज्यों को इतनी ज़रूरी स्वायत्तता भी नहीं दी गई कि अपने स्थानीय संदर्भों के अनुकूल सर्वोत्तम तरीकों से चुनौतियों से निपट सकें। केंद्र ऊपर से एक के बाद एक मनमाने और परस्पर विरोधी निर्देश जारी करता रहा। इस बीच, केंद्र द्वारा राज्यों को वित्तीय संसाधनों से वंचित रखा गया; यहां तक कि उनके हिस्से के जीएसटी संग्रहण के उनके हिस्से का भुगतान भी नहीं किया गया।

छठा संकट, जो पांचवे संकट से जुड़ा है, भारतीय लोकतंत्र का कमज़ोर होना है। इस महामारी की आड़ में बुद्धिजीवियों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को गैर-कानूनी गतिविधि रोकथाम अधिनियम (यूएपीए) जैसे निष्ठुर कानूनों के तहत हिरासत में लिया जा रहा है। कई अध्यादेश पारित किए जा रहे हैं और संसद में चर्चा किए बिना ही महत्वपूर्ण नीतिगत निर्णय लिए जा रहे हैं। समाचार पत्रों और टीवी चैनलों के मालिकों पर सरकार की आलोचना न करने का दबाव डाला जा रहा है। इसी बीच, राज्य और सत्तारूढ़ दल प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व को चमकाने में लगे हैं। आपातकाल के दौरान, एक अकेले देवकांत बरुआ ने कहा था कि 'इंदिरा भारत है और भारत इंदिरा है'; लेकिन अब तो चाटुकारिता की होड़ लगी है।

भारतीय चिकित्सा तंत्र अत्यंत दबाव में रहा है; भारतीय अर्थव्यवस्था जर्जर स्थिति में है; भारतीय समाज विभाजित और नाज़ुक है; भारत का संघीय ढांचा पहले से कहीं अधिक कमज़ोर है। भारतीय राज्य तेज़ी से सत्तावादी बन रहा है। इन सबका मिला-जुला प्रभाव ही इसे देश के विभाजन के बाद का सबसे बड़ा संकट बना देता है।

एक देश के रूप में हम कैसे अपनी अर्थव्यवस्था, समाज और राजतंत्र के लिए इस कठिन समय में से बगैर किसी बड़े नुकसान के उबर सकते हैं? सबसे पहले तो, सरकार को उन समस्याओं के विभिन्न (और परस्पर सम्बंधित) आयामों को पहचानना होगा जिनका सामना वर्तमान में हमारा राष्ट्र कर रहा है। दूसरा, सरकार को 1947 में जवाहरलाल नेहरु और वल्लभभाई पटेल द्वारा लिए गए फैसलों से कुछ सीख लेना चाहिए। उन्होंने उस समय की चुनौतियों की

गंभीरता को पहचानते हुए अपने वैचारिक मतभेदों को अलग रखकर बी. आर. अंबेडकर जैसे भूतपूर्व विरोधियों को भी कैबिनेट में शामिल किया था। इस तरह की एक राष्ट्रीय सरकार बनाना तो अब संभव नहीं है लेकिन प्रधानमंत्री जानकार और समझदार विपक्षी नेताओं से सक्रिय परामर्श तो ले ही सकते हैं। तीसरा, प्रधानमंत्री को बिना सोचे-विचारे लिए गए नाटकीय असर वाले आकस्मिक फैसले लेने की बजाय अर्थशास्त्र, विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य के विशेषज्ञों का सम्मान करना चाहिए और उन पर भरोसा करना सीखना चाहिए। चौथा, केंद्र और सत्तारूढ़ दल को उन राज्यों को परेशान करने की अपनी इच्छा को पूरी तरह छोड़ देना चाहिए जहां उनका शासन नहीं है। पांचवां, केंद्र को सिविल सेवाओं, सशस्त्र बलों, न्यायपालिका और जांच एजेंसियों को सत्ता का हथियार बनाने के बजाय पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए।

यह हमारे अतीत और वर्तमान पर एक व्यक्ति की समझ पर आधारित सुझावों की एक आंशिक सूची है। यह कोई साधारण संकट नहीं है, बल्कि शायद गणतंत्र के इतिहास की सबसे बड़ी चुनौती है। इससे निपटने के लिए हमारे सारे संसाधनों और संवेदना की आवश्यकता होगी। ***(स्रोत फीचर्स)***

महामारी के अगले दो वर्ष

वैसे तो कोई नहीं जानता कि कोविड-19 महामारी के अगले अंकों में क्या होने वाला है लेकिन अधिकांश विशेषज्ञ सहमत हैं कि यह महामारी लगभग दो साल जारी रहेगी। युनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा के शोधकर्ताओं द्वारा जारी की गई एक रिपोर्ट में वर्ष 1700 से लेकर अब तक की 8 फ्लू महामारियों की जानकारी के साथ कोविड-19 महामारी का डैटा भी शामिल किया गया है।

इस रिपोर्ट के अनुसार SARS-CoV2 (नया कोरोनावायरस) इन्फ्लुएंज़ा के वायरस की एक किस्म तो नहीं है लेकिन इसमें और फ्लू महामारी के वायरसों के बीच कुछ समानताएं हैं। दोनों ही श्वसन मार्ग के वायरस हैं जिनकी लोगों में कोई पूर्व प्रतिरक्षा उपस्थित नहीं है। दोनों ही लक्षण-रहित लोगों से अन्य लोगों में फैल सकते हैं। लेकिन अंतर यह है कि कोविड-19 वायरस अन्य फ्लू वायरस की तुलना में अधिक आसानी से फैलता नज़र आ रहा है और SARS-CoV2 संक्रमणों का एक ज़्यादा बड़ा हिस्सा लक्षण-रहित लोगों से फैलाव के कारण हो रहा है।

इसके आसानी से फैलने की क्षमता को देखते हुए लगभग 60 प्रतिशत से 70 प्रतिशत आबादी को प्रतिरक्षा विकसित करना होगा, तभी हम हर्ड इम्यूनिटी यानी झुंड प्रतिरक्षा से लाभांवित हो पाएंगे। हालांकि इसमें अभी काफी समय लगेगा क्योंकि अभी कुल आबादी की तुलना में बहुत कम लोग इससे संक्रमित हुए हैं।

रिपोर्ट में कोविड-19 के भविष्य को लेकर तीन संभावित परिदृश्य प्रस्तुत किए गए हैं।

परिदृश्य 1: इस परिदृश्य में, वर्तमान कोविड-19 तूफान के बाद कुछ छोटे-छोटे सैलाबों की शृंखलाएं आएंगी। ये दो साल की अवधि तक निरंतर आती रहेंगी और धीरे-धीरे 2021 तक खत्म हो जाएंगी।

परिदृश्य 2: एक संभावना यह है कि 2020 के वसंत में प्रारंभिक लहर के बाद सर्दियों के मौसम में एक बड़ा सैलाब उभरे, जैसा कि 1918 की फ्लू महामारी में हुआ था। हो सकता है इसके बाद एक-दो छोटी लहरें 2021 में भी सामने आएं।

परिदृश्य 3: कोविड-19 की शुरुआती वसंती लहर के बाद इसके संक्रमण की रफ्तार कम हो जाए और आगे कोई विशेष पैटर्न नज़र न आए।

रिपोर्ट के अनुसार नई लहरों का सामना करने के लिए समय-समय पर अलग-अलग क्षेत्रो में आवश्यकतानुसार नियंत्रण के उपाय करने होंगे और छूट देना होगा ताकि स्वास्थ्य सेवाओं पर अत्यधिक बोझ न पड़े। फिलहाल जो भी परिदृश्य उभरकर आता हो, हमें कम से कम 18 से 24 महीनों तक कोविड-19 की सक्रियता के लिए तैयार रहना चाहिए।***(स्रोत फीचर्स)***

कोविड-19:न टीका चाहिए, न सामूहिक प्रतिरोध

मिलिंद वाटवे

मैंने पहले एक लेख में कहा था कि इस बात की प्रबल संभावना है कि वर्तमान महामारी के लिए ज़िम्मेदार वायरस (SARS Cov-2) का विकास इस तरह होगा कि उसकी उग्रता या अनिष्टकारी प्रवृत्ति कम होती जाएगी। मुझे ऐसी उम्मीद इसलिए है कि एक ओर तो लगभग सारे देश सारे ज्ञात कोरोना-पॉज़िटिव प्रकरणों में सख्त क्वारेंटाइन लागू कर रहे हैं। लेकिन दूसरी ओर, हम बहुत व्यापक परीक्षण नहीं करवा पाएंगे, जिसका परिणाम यह होगा कि बहुत सारे प्रकरणों में लक्षण-रहित व्यक्तियों की जांच नहीं हो पाएगी। ये लोग घूमते-फिरते रहेंगे और वायरस को फैलाते रहेंगे।

वायरस बड़ी आबादी तक पहुंचता है और इसकी उत्परिवर्तन की दर भी काफी अधिक होती है। इस वजह से तमाम परिवर्तित रूप उभरते रहेंगे। जो किस्में अधिक उग्र व अनिष्टकारी होंगी, वे गंभीर संक्रमण पैदा करेंगी, जिसके चलते ऐसे मरीज़ों की जांच होगी और उन्हें क्वारेंटाइन किया जाएगा।

दूसरी ओर, कम उग्र रूप लक्षण-रहित या हल्के-फुल्के लक्षणों वाले संक्रमण पैदा करेंगे, जो शायद स्क्रीनिंग और उसके बाद होने वाले क्वारेंटाइन से बच निकलेंगे। इसका मतलब है कि ये फैलते रहेंगे। वायरस की कई पीढियों, जो बहुत लंबी अवधि नहीं होती, में प्राकृतिक चयन कम उग्र रूपों को तरजीह देगा।

जहां वायरस सम्बंधी सारा अनुसंधान टीके के विकास, उसकी रोगजनक पद्धति या उपचार विकसित करने पर है, वहीं वायरस के जैव विकास पर कोई बात नहीं हो रही है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह है कि चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत लोगों को जैव विकास के लिहाज़ से सोचने की तालीम ही नहीं दी जाती। दूसरा कारण यह है कि उग्रता/अनिष्टकारी प्रवृत्ति को नापना संभव नहीं है। वायरस के डीएनए का अनुक्रमण करना, उसके द्वारा बनाए गए प्रोटीन्स का अध्ययन करना, संक्रमित व्यक्ति में एंटीबॉडी खोजना वगैरह आसान है। शोधकर्ता आम तौर वही करते हैं, जो सरल हो, वह नहीं जो वैज्ञानिक दृष्टि से प्रासंगिक हो।

चूंकि आप उग्रता में परिवर्तन को आसानी से नाप नहीं सकते, इसलिए इस पर आधारित परिकल्पना की कोई बात भी नहीं करता। मैं इसे विज्ञान में 'प्रमाण-पूर्वाग्रह' कहता हूं। यदि किसी परिकल्पना को सिद्ध करने या उसका खंडन करने के लिए प्रमाण जुटाना मुश्किल हो, तो लोग उसके बारे में चर्चा करने से कतराते हैं, क्योंकि उसके आधार पर शोध पत्र तो तैयार नहीं हो सकता। महत्व इस बात का नहीं होता कि कोई परिकल्पना जन स्वास्थ्य के लिहाज़ से वैज्ञानिक महत्व रखती है या नहीं बल्कि इस बात का होता है कि क्या आप शोध पत्र प्रकाशित कर पाएंगे।

अलबत्ता, विश्व स्तर पर रोग प्रसार के रुझान और भारतीय परिदृश्य से भी निश्चित संकेत मिल रहे हैं कि वायरस की उग्रता कम हो रही है। यद्यपि संक्रमण बढ़ रहा है, लेकिन समय के साथ मृत्यु दर लगातार कम हो रही है। पैटर्न पर नज़र डालिए। मध्य अप्रैल से, हालांकि प्रतिदिन नए संक्रमित व्यक्तियों की संख्या बढ़ी है, लेकिन प्रतिदिन मौतों की संख्या कम हुई है।

यही भारत में भी दिख रहा है। दरअसल, भारत में रोगी मृत्यु दर (यानी कोविड-19 के मरीज़ों की संख्या के अनुपात में मौतें) पहले से ही कम थी। और यह दर लगातार कम हो रही है, हालांकि प्रतिदिन कुल मौतों की संख्या में गिरावट आना शेष है।

मैंने यहां भारत में प्रतिदिन रिपोर्टेड पॉज़िटिव केसेस को प्रतिदिन रिपोर्टेड मौतों के अनुपात के रूप में प्रस्तुत किया है। यह ग्राफ उस दिन से शुरू किया है जिस दिन प्रतिदिन मृत्यु का आंकड़ा 50 से ऊपर हो गया था। यह सही है कि दिन-ब-दिन उतार-चढ़ाव दिखते हैं लेकिन फिर भी मृत्यु में लगातार कमी की प्रवृत्ति स्पष्ट है।

अब यदि हम एक सरल सी मान्यता लेकर चलें कि यही प्रवृत्ति जारी रहेगी, तो हम कह सकते हैं कि भारत में 35 दिनों में कोविड-19 साधारण फ्लू जितना खतरनाक रह जाएगा। ज़ाहिर है, यह सरल मान्यता थोड़ी ज़्यादा ही सरल है, क्योंकि ग्राफ लगातार एक सरीखा नहीं रहेगा।

दूसरी शर्त यह है कि केस-मृत्यु दर को मृत्यु दर के तुल्य नहीं माना जा सकता। किसी बढ़ती महामारी में केस-मृत्यु दर मृत्यु दर को कम करके आंकती है। 35 दिन का उपरोक्त अनुमान थोड़ा आशावादी हो सकता है। हो सकता है थोड़ा ज़्यादा समय लगे लेकिन दिशा तसल्ली देती है। मैंने अपने कुछ चिकित्सक दोस्तों से यह भी सुना है कि अब सघन देखभाल की ज़रूरत वाले मरीज़ों की संख्या भी कम हो रही है।

टीके के परीक्षण और बड़े पैमाने पर उत्पादन में कई महीने लग जाएंगे और यह तत्काल उपलब्ध भी नहीं हो पाएगा। और शायद यह जन साधारण के लिए बहुत महंगा साबित हो।

भारत जैसे विशाल देश के लिए सामूहिक प्रतिरोध (हर्ड इम्यूनिटी) हासिल करना दूर की कौड़ी है और शायद एक-दो सालों में संभव न हो।

लेकिन इन दोनों चीज़ों से पहले संभवतः जैव विकास इस वायरस की जानलेवा प्रवृत्ति से निपट लेगा। इसमें कोई शक नहीं कि हमें क्वारेंटाइन को जारी रखना होगा और लक्षण-सहित मरीज़ों की बढ़िया चिकित्सकीय देखभाल करनी चाहिए लेकिन लक्षण-रहित व्यक्तियों को लेकर ज़्यादा हाय-तौबा करने की ज़रूरत नहीं है। क्योंकि वही हमें बचाने वाले हैं। हमें एकाध महीने इन्तज़ार करके देखना चाहिए कि क्या यह भविष्यवाणी सही होती है या नहीं। यदि यह भविष्यवाणी गुणात्मक या मात्रात्मक रूप से सही साबित होती है तो चिकित्सा विज्ञान के लिए अच्छी दूरगामी सीख होगी। उग्रता प्रबंधन की रणनीति सार्वजनिक स्वास्थ्य नियोजन का एक अभिन्न अंग होना चाहिए। यह पहली या आखरी बार नहीं है कि कोई नया वायरस प्रकट हुआ है। ऐसा तो होता ही रहेगा। सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रबंधन हेतु जैव विकास की गतिशीलता को समझना निश्चित रूप से ज़रूरी है। ***(स्रोत फीचर्स)***

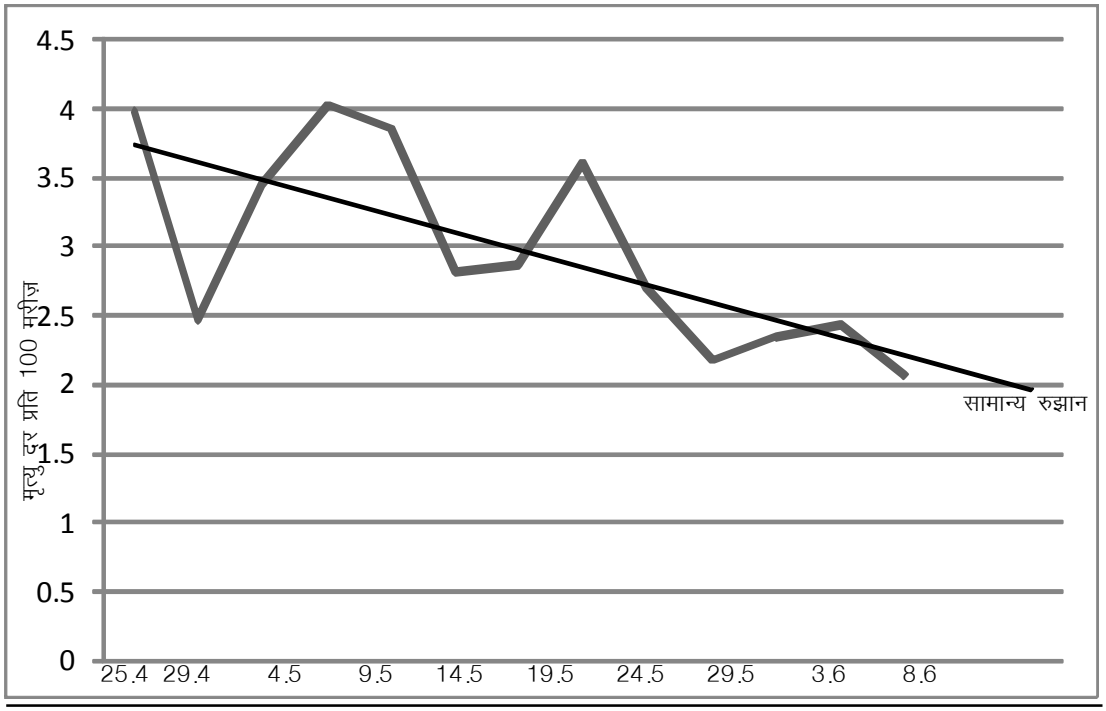

आधा मस्तिष्क भी काम करता है!

डॉ. विपुल कीर्ति शर्मा

'सिर में भूसा भरा है क्या?' ऐसे ताने अक्सर यह जताने वाले होते हैं कि मस्तिष्क नहीं है। सही भी है अगर मस्तिष्क नहीं है तो शरीर मुर्दे के समान बिस्तर पर पड़ा रहता है जैसा अक्सर ब्रेन डेथ के मामले में होता है। मस्तिष्क हमारी चेतना, विचार, स्मृति, बोलचाल, हाथ-पैरों की गति और हमारे शरीर के भीतर अनेक अंगों के कार्य को नियंत्रित करता है। कुछ लोगों को लगता है कि उनका मस्तिष्क जानकारियों से ठूंस-ठूंस कर भरा है और उसका इंच भर हिस्सा भी निकालकर अलग कर दिया जाए तो मस्तिष्क कार्य नहीं कर सकेगा। तो ऐसे व्यक्ति की कल्पना कीजिए जिसके पास आधा मस्तिष्क हो। तो क्या वह सामान्य क्रियाकलाप कर सकेगा या ज़िंदा भी बचेगा?

हेनरी के जन्म के कुछ ही घंटों के पश्चात मां मोनिका जोन्स यह समझ गई थी कि उनका नवजात बेटा एक दुर्लभ और गंभीर न्यूरोलॉजिकल समस्या से पीड़ित है। हेनरी के मस्तिष्क का एक तरफ का हिस्सा असामान्य रूप से बड़ा था और उसे प्रतिदिन सैकड़ों मिर्गी जैसे दौरे पड़ते थे। दवाएं भी बेअसर लग रही थी। फिर डॉक्टरों के सुझाव से अनेक ऑपरेशन का दौर साढ़े तीन माह की उम्र में प्रारंभ हुआ और 3 साल का होते-होते हेनरी आधा मस्तिष्क विहीन हो गया।

मस्तिष्क के ऑपरेशन की प्रक्रिया कोई नई नहीं है। 1920 में पहली बार मस्तिष्क का ऑपरेशन किया गया था जिसमें मस्तिष्क का कैंसर युक्त हिस्सा निकालकर अलग कर दिया गया था। उसके बाद कई ऑपरेशन किए जा चुके हैं। यह ज्ञात है कि यदि किसी बच्चे का आधा मस्तिष्क बीमारियों के कारण ठीक से कार्य नहीं कर पाता है तो ऑपरेशन करके निकाल देने पर भी वह भला चंगा होकर पढ़ना-लिखना, खेलना-कूदना जैसे सामान्य कार्य कर लेता है। आधे मस्तिष्क को सही तरीके से कार्य करता देखकर वैज्ञानिक भी आश्चर्य चकित हैं।

मोटे तौर पर आधे मस्तिष्क वाले 20 प्रतिशत मरीज़ों तो वयस्क होकर सामान्य रोज़गार भी प्राप्त कर लेते हैं। शोध पत्रिका *सेल रिपोर्ट्स* में प्रकाशित एक हालिया शोध से पता चलता है कि आधे मस्तिष्क में पुनर्गठन के कारण कुछ व्यक्ति पहले की तरह ठीक हो जाते हैं।

कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी में कार्यरत संज्ञान वैज्ञानिक डॉरिट किलमैन कहते हैं कि मस्तिष्क बहुत ही लचीला यानी अपने कार्य को पुनर्गठित करने में सक्षम होता है। यह मस्तिष्क की संरचना में अचानक उत्पन्न हुए नुकसान की भरपाई भी कर सकता है। कुछ मामलों में नेटवर्क खो चुके हिस्से के कार्य को शेष मस्तिष्क पूरी तरह अपना लेता है।

उपरोक्त अध्ययन को आंशिक रूप से एक गैर-लाभकारी संगठन द्वारा वित्त पोषित किया गया। श्रीमती जोन्स और उनके पति ने यह संगठन ऐसे मरीज़ों की मदद के लिए बनाया था जो मिर्गी जैसे दौरे रोकने के लिए ऑपरेशन कराने के इच्छुक थे। अध्ययन के निष्कर्ष बड़े बच्चों में भी आधा मस्तिष्क निकालने के संदर्भ में उत्साहवर्धक हैं।

सेरेब्रम मस्तिष्क का सबसे बड़ा भाग है। यह वाणि, विचार, भावनाएं, पढ़ने, लिखने और सीखने तथा मांसपेशियों के कार्यों को नियंत्रित करता है। इसका दायां भाग शरीर के बाईं ओर की मांसपेशियों और बायां भाग शरीर के दाईं ओर की मांसपेशियों को नियंत्रित करता है। यद्यपि सेरेब्रम के दोनों भाग (हेमीस्फीयर) दिखने में एक जैसे दिखते हैं किन्तु कार्य में एक-से नहीं होते। इसका बायां भाग उन कार्यों को भी करता है जिनमें तर्क लगते हैं जैसे विज्ञान और गणित की समझ। जबकि दायां भाग अन्य कार्यों के अलावा रचनात्मक और कला से सम्बंधित कार्यों को नियंत्रित करता है। सेरेब्रम के दोनों आधे भाग कार्पस केलोसम से जुड़े हुए होते हैं। मस्तिष्क का यह भाग ऊपर से सपाट न होकर

कई दरारों एवं उभारों से मिलकर बनता है और अखरोट जैसी संरचना वाला होता है। राइट हेंडेड व्यक्तियों में सेरेब्रम का बायां भाग प्रभावी होता है तथा मुख्य रूप से भाषा की समझ, बोलने को नियंत्रण करता है।

ऐसे लोग जिनका हेमिस्फेरोक्टोमी (सेरेब्रम का आधा हिस्सा निकाल देने का ऑपरेशन) हुआ हो, सामान्य व्यक्ति की तरह ही दिखते और व्यवहार करते हैं। पर मेग्नेटिक रेसोनेन्स इमेजिंग (एम.आर.आई.) की रिपोर्ट बताती है कि उनके मस्तिष्क का आधा भाग बचपन में ही निकाल दिया गया था। यह ज्ञात होते ही ऐसा लगता है कि ऐसे व्यक्तियों का सामान्य कार्य करना असंभव है। खास कर जब इसकी तुलना हृदय जैसे किसी अंग से की जाए।

क्या हृदय को दो बराबर हिस्सों में बांटने पर वह कार्य कर पाएगा? बिलकुल नहीं। आप अपने मोबाइल को अगर दो हिस्सों में बांट दे तो यह काम नहीं करेगा। इस प्रकार मस्तिष्क के बहुत से कार्य ऐसे हैं जहां सेरेब्रम के दोनों भाग मिलकर कार्य करते हैं जैसे चेहरे की पहचान। परंतु हाथ हिलाने जैसे कार्य मस्तिष्क के एक भाग से होते हैं। एक मधुर संगीत के लिए गायक और अनेक वाद्य यंत्रों की जुगलबंदी ज़रूरी है। लगभग ऐसा ही मस्तिष्क के भागों का कार्य है। इस सबकी बजाय शोधकर्ताओं ने पाया कि सामान्य कनेक्शन की तुलना में आधे बचे मस्तिष्क ने बचे हुए कनेक्शन को मज़बूत किया और तंत्रिकाओं के बीच बेहतर तालमेल एवं संवाद बैठाया। यह बिल्कुल उस परिस्थिति के जैसा था जहां युगल गीत के कार्यक्रम में जोड़ीदार की अनुपस्थिति में एक ही गायक ने महिला एवं पुरुष दोनों की आवाज निकालकर गाना गाया हो। वैसे ही मस्तिष्क के भाग भी मल्टीटास्किंग यानी बहु-कार्य करने लगे थे।

शोधकर्ताओं के लिए ये परिणाम उत्साहजनक हैं और वे अभी भी इस प्रक्रिया को समझने की कोशिश कर रहे हैं। लगभग 200 बच्चों में मस्तिष्क के ऑपरेशन करने वाले बाल न्यूरोलाजिस्ट डॉ. अजय गुप्ता कहते हैं कि मस्तिष्क परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालने में बेहद कामयाब रहता है। अक्सर हेमिस्फेरेक्टोमी के ऑपरेशन्स 4 या 5 वर्ष की आयु के बच्चों में बेहद सफल रहे हैं क्योंकि बड़े होने से पहले उनका मस्तिष्क कमियों की पूर्ति कर लेता है। यद्यपि दौरे पड़ने वाले वयस्क मरीज़ों में मस्तिष्क का ऑपरेशन अंतिम उपाय ही माना जाता है।

बच्चों में भी ये ऑपरेशन बेहद गंभीर होते हैं। मस्तिष्क के निकले हुए हिस्से में तरल भरने से लगातार सिर दुखने जैसी अवस्था बनी रहती है। ऑपरेशन के बाद बच्चे कमज़ोर हो जाते हैं और एक तरफ के हाथ-पैर पर नियंत्रण नहीं रह पाता है। इसके अलावा एक तरफ का दिखना बंद हो सकता है तथा आवाज़ किस दिशा से आ रही है यह बोध भी नहीं हो पाता है। बच्चे की शिक्षा के दौरान पढ़ने, लिखने और गणित पर ज़्यादा ध्यान देना होता है। वयस्क होते-होते ऐसे बच्चे मस्तिष्क के द्वारा मल्टी टास्किंग अपनाने के कारण सामान्य हो जाते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में....

- **महामारी और गणित**
- **कोविड-19 प्लाज़्मा थेरेपी**
- **स्वास्थ्य क्षेत्र की व्यापक चुनौतियां**
- **कोविड-19: नस्लवाद पर वैज्ञानिक चोला**

स्रोत अगस्त 2020
अंक 379

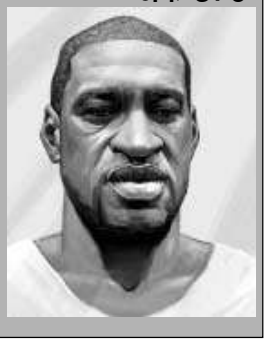

ऑटिज़्म अध्ययन को एक नई दिशा

प्रोफेशनल बर्नऑउट यानी काम के बोझ से उपजे तनाव और काम के प्रति अरुचि से तो हम वाकिफ हैं। लेकिन *ऑटिज़्म इन एडल्टहुड* पत्रिका में प्रकाशित एक ताज़ा शोध कहता है कि ऑटिस्टिक लोगों को बर्नआउट महज़ अधिक काम के दबाव से नहीं होता बल्कि ऑफिस में गैर-ऑटिस्टिक लोगों के साथ काम करते वक्त अपने ऑटिस्टिक व्यवहार को छिपाने का जो अभिनय करना पड़ता है वह एकदम थकाऊ होता है। इसके चलते उनमें ध्वनि और प्रकाश को बर्दाश्त करने की क्षमता में कमी आती है और वे अपने हुनर भी गंवा बैठते हैं।

पोर्टलैंड स्टेट युनिवर्सिटी के डोरा रेमेकर और साथियों ने अपने अध्ययन में ऑटिस्टिक लोगों के साक्षात्कार लिए और सोशल मीडिया पर लिखी टिप्पणियों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि हमें ऑटिस्टिक-हितैषी कार्यस्थलों की ज़रूरत है जहां लोगों को अपने ऑटिस्टिक व्यवहार को छिपाना ना पड़े। रेमेकर बताते हैं कि अक्सर ऑटिस्टिक व्यक्ति पर ही इस समस्या से निपटने का दबाव होता है। कार्यस्थलों पर ऐसे माहौल की ज़रूरत है जो ऑटिस्टिक व्यक्ति को उसी रूप में स्वीकार करें जैसे वे हैं, और काम में लचीलापन दें।

रेमेकर ने ऑटिज़्म अध्ययन को एक नई दिशा दी है। ऑटिज़्म के परंपरागत अध्ययन ऑटिज़्म के कारण और इलाज की पड़ताल करते हैं और बच्चों पर केंद्रित रहते हैं। इसके विपरीत इस अध्ययन ने ऑटिज़्म की व्यवहारगत मुश्किलों की ओर ध्यान दिलाया है और इसमें ऑटिस्टिक वयस्कों को शामिल किया गया है, जिन्होंने अपने अनुभव अध्ययन में जोड़े। ऐसे ही एक अन्य अध्ययन में यह देखने की कोशिश की जा रही है कि कैसे शिक्षक और कर्मचारी कॉलेज में ऑटिस्टिक छात्रों के अनुभवों को बेहतर बना सकते हैं।

वैसे तो कई अध्ययन हाशिएकृत लोगों को ध्यान में रखकर किए जा रहे हैं लेकिन अब भी अध्ययन में ऑटिस्टिक लोगों को शामिल करना आसान नहीं है। कुछ वैज्ञानिकों को लगता है कि अध्ययन करने वालों में यदि ऑटिस्टिक व्यक्ति होंगे तो हो सकता है कि उनके पूर्वाग्रहों के चलते अध्ययनों की वस्तुनिष्ठता में कमी आए। इस पर अध्ययन की सह-लेखिका निकोलेडिस का कहना है कि ऑटिस्टिक लोगों ने ही उनके सर्वेक्षण उपकरणों में तब्दीली करने में मदद की। जैसे एक सवाल थाः 'आप इस गतिविधि को __ प्रतिशत समय करते हैं।' बौद्धिक विकलांगता वाले ऑटिस्टिक लोगों ने प्रतिशत के साथ काम करने में असुविधा व्यक्त की इसलिए उनकी टीम ने प्रतिशत के स्थान पर रंगभरे चित्रों का उपयोग किया। उनका कहना है कि यदि ऑटिस्टिक लोगों के साथ किए गए अध्ययन में सामान्य साधन उपयोग किए होते तो परिणाम सही नहीं आते।

इसी तरह की पहल पिछले वर्ष शुरू हुए जर्नल *ऑटिज़्म इन एडल्टहुड* ने की है, जिसकी मुख्य संपादक निकोलेडिस हैं और एक संपादक स्व-घोषित ऑटिस्टिक रेमेकर हैं। कई लोग इसकी नीतियों से हैरान हो सकते हैं। जैसे इसमें प्रकाशन के लिए आने वाले हर अध्ययन की कम से कम एक समीक्षा ऑटिस्टिक समीक्षक द्वारा की जाती है। ऑटिस्टिक समीक्षक शोध पत्र की भाषा और जानकारी की बोधगम्यता पर टिप्पणी करते हैं। यह पहली बार है कि ऑटिस्टिक लोगों की बात को सुना गया है, अहम माना गया है। ऑटिस्टिक वयस्कों का अपने लिए बोलने का अधिकार और कर्तव्य बनता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

खराब प्रतिरक्षा कोशिकाएं हमें बूढ़ा बना सकती हैं

हाल ही में चूहों पर किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि शरीर में उपस्थित टी-कोशिकाएं हमें रोगाणुओं से बचाने के अलावा उम्र बढ़ने की गति को भी तेज़ कर सकती हैं।

देखा जाए तो आयु में वृद्धि के साथ टी-कोशिकाओं की रोगाणुओं से लड़ने की क्षमता भी कम हो जाती है। इसके कारण वृद्धजन संक्रमण के प्रति अधिक और टीकों के प्रति कम संवेदनशील हो जाते हैं। टी-कोशिकाओं के कमज़ोर होने का एक कारण उनके माइटोकांड्रिया की सक्रियता में कमी है, जो कोशिकाओं को शक्ति प्रदान करने का काम करते हैं। लेकिन टी-कोशिकाओं के आधार पर न सिर्फ बुढ़ापे का अनुमान लगाया जा सकता है बल्कि ये बुढ़ापे को तेज़ करने में मदद भी करती हैं। शोधकर्ताओं का मानना है कि टी-कोशिकाएं शोथ-उत्तेजक अणु छोड़ती हैं जिससे बुढ़ाने की प्रक्रिया तेज़ हो जाती है।

इन परिकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए युनिवर्सिटी हॉस्पिटल 12 की प्रतिरक्षा विज्ञानी मारिया मिटलब्रन और उनके सहयोगियों ने कुछ चूहों में आनुवंशिक रूप से ऐसा बदलाव किया कि उनके माइटोकांड्रिया में एक प्रोटीन समाप्त हो गया। इसकी वजह से ये कोशिकाएं माइटोकांड्रिया-आधारित कुशल ऊर्जा तंत्र की बजाय मजबूरन एक कम कार्यकुशल प्रणाली का उपयोग करने लगती हैं। *साइंस* में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार इस परिवर्तन के बाद चूहों में 7 माह की आयु, जो उनकी युवावस्था होती है, में ही बुढ़ापे के लक्षण नज़र आने लगे। वे सुस्त हो गए थे, मांसपेशियां कमज़ोर हो गई थीं और संक्रमण के प्रति प्रतिरोध भी कम हो गया था।

वैज्ञानिकों ने देखा कि परिवर्तित चूहों की टी-कोशिकाएं ऐसे अणु छोड़ रही थीं जो शोथ पैदा करते हैं। इससे लगता है कि इन चूहों के शारीरिक क्षय में टी-कोशिकाओं की भी भूमिका है।

तो वैज्ञानिकों ने उम्र बढ़ने की गति को धीमा करने के लिए इससे उल्टे प्रयोग भी करके देखे। सबसे पहले उन्होंने ट्यूमर नेक्रोसिस फैक्टर अल्फा (टीएनएफ-अल्फा) को ब्लॉक करने वाली दवा दी। टीएनएफ-अल्फा वास्तव में टी-कोशिकाओं द्वारा छोड़ा जाने वाला शोथ-उत्प्रेरक अणु है। टीएनएक-अल्फा को ब्लॉक करने से चूहों की पकड़ मज़बूत हुई, भूलभुलैया में रास्ता खोजने में उनका प्रदर्शन बेहतर हुआ और हृदय की क्षमता में भी वृद्धि हुई।

इसके अलावा मिटलब्रन ने चूहों को एक ऐसा पदार्थ भी दिया जो एनएडी नामक अणु के स्तर को बढ़ाता है। यह अणु कोशिकाओं को भोजन से ऊर्जा प्राप्त करने के सक्षम बनता है और उम्र के साथ इसके स्तर में कमी आती है। लेकिन चूहों में इसका स्तर बढ़ाने से वे अधिक सक्रिय बन गए और उनके हृदय भी मज़बूत हो गए।

वर्तमान में रुमेटाइड आर्थ्राइटिस और क्रोहन रोग जैसी बीमारियों के लिए टीएनएफ-अल्फा का उपयोग किया जा रहा है और कई कम्पनियां एनएडी का स्तर बढ़ाने वाली औषधियां बेचती हैं। इसलिए मिटलब्रन का सुझाव है कि इनके क्लीनिकल परीक्षण करना चाहिए कि क्या ये बुढ़ाने की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती हैं। वैसे कई शोधकर्ताओं को इन परिणामों की प्रासंगिकता पर संदेह है। ***(स्रोत फीचर्स)***

वर्ग पहेली 189 का हल

1क्वा	रें	टा	इ	2न		3शे	र	4पा
शि				5मी	6न			र
7ओ	ली	य	8म		9म	ल	10मा	स
र्क			11द	12फ	न		प	
13र	14स	ना		ल		15मा	न	16क
	ह		17ऐ	न	18क			श
19प	र	का	र		20ली	थि	य	म
ह			21म	22त				क
23र	ज	त		24प	र	व	रि	श

नाक के सूक्ष्मजीव संसार में मिला नया बैक्टीरिया

यह तो सब जानते हैं कि कई बैक्टीरिया हमारे लिए फायदेमंद होते हैं। जैसे हमारी आंत में बसे बैक्टीरिया भोजन पचाने में मददगार हैं, जीभ और त्वचा पर बसे बैक्टीरिया हमें रोगजनकों से सुरक्षा देते हैं। और अब हाल ही में शोधकर्ताओं को हमारी नाक में भी लाभदायक बैक्टीरिया मिले हैं। *सेल* पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार यह नासिका सूक्ष्मजीव संसार नासूर (गंभीर साइनस समस्या) या एलर्जी से बचाने में मददगार हो सकता है।

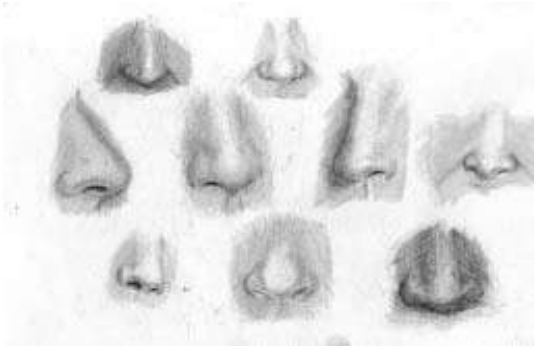

युनिवर्सिटी ऑफ एंटवर्प की सूक्ष्मजीव विज्ञानी सारा लेबीर और उनके साथियों ने 100 स्वस्थ लोगों की नाक में बसे सूक्ष्मजीवों की जासूसी की और उनकी तुलना नाक या साइनस की जीर्ण सूजन वाले मरीज़ों की नाक के सूक्ष्मजीवों से की। उन्हें सामान्य तौर पाए जाने वाले सूक्ष्मजीवों के अलावा एक बैक्टीरिया समूह *लैक्टोबेसिलस* दिखा, जो स्वस्थ लोगों की नाक में 10 गुना अधिक संख्या में था। *लैक्टोबेसिलस* सूक्ष्मजीव-रोधी और सूजन-रोधी होते हैं।

आम तौर पर *लैक्टोबेसिलस* बैक्टीरिया कम ऑक्सीजन वाले क्षेत्रों में पनपते हैं, इसलिए इंसानों की नाक में इनकी मौजूदगी से शोधकर्ता हैरान थे, क्योंकि नाक तो ताज़ा हवा से भरपूर होती है। लेकिन बारीकी से अवलोकन करने पर पता चला है कि इस बैक्टीरिया में केटालेसेस नामक खास जीन्स मौजूद हैं जो अन्य *लैक्टोबेसिलस* बैक्टीरिया से अलग हैं। केटालेसेस सुरक्षित तरीके से ऑक्सीजन को बेअसर कर देते हैं। अर्थात ये *लैक्टोबेसिलस* नाक के परिवेश के लिए अनुकूलित हैं।

बैक्टीरिया पर बहुत छोटे-छोटे बाल के समान उपांग भी दिखे जो बैक्टीरिया को नाक की आंतरिक सतह पर लंगर डालने में मदद करते हैं। और लेबीर का विचार है कि बैक्टीरिया इन रोमिल उपांगों का उपयोग नाक की त्वचा की कोशिकाओं के ग्राहियों से जुड़ने के लिए करते हैं, जिससे कोशिकाओं में प्रवेश मार्ग बंद हो जाता है। यदि कोशिकाएं कम खुली रहेंगी तो एलर्जी पैदा करने वाले और नुकसानदेह बैक्टीरिया का कोशिका में प्रवेश मुश्किल होगा।

लेकिन लेबीर यह भी जानती हैं कि स्वस्थ लोगों की नाक में *लैक्टोबेसिलस* बैक्टीरिया की उपस्थिति मात्र के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि ये बीमारी से सुरक्षा देते हैं। इसकी पुष्टि के लिए जंतु मॉडल पर परीक्षण करना भी मुश्किल होता है क्योंकि उनकी नाक हम मनुष्यों से बहुत अलग होती है।

कुछ विशेषज्ञ इस बात से भी सहमत नहीं है कि जो *लैक्टोबेसिलस* मनुष्यों की नाक में मिले हैं वे नाक में बसने के लिए अनुकूलित हैं। हमारे मुंह में भी लाखों *लैक्टोबेसिलस* बसते हैं और हो सकता है कि छींक के माध्यम से वे नाक में पहुंच गए हों।

बहरहाल लेबीर का इरादा नासिका प्रोबायोटिक्स का उपयोग करके इलाज विकसित करने का है। वैसे तो साइनस का उपचार उपलब्ध है लेकिन गंभीर साइनस की समस्या में लगातार उपचार करने की ज़रूरत होती है जिससे एंटीबायोटिक दवाओं के खिलाफ प्रतिरोध विकसित होने की संभावना होती है। इन बैक्टीरिया के लाभकारी हिस्से का उपयोग कर दवाओं के खिलाफ प्रतिरोध हासिल करने के जोखिम को कम किया जा सकता है। इसके पहले चरण में उन्होंने नाक के लिए एक स्प्रे विकसित किया है जिसमें *लैक्टोबैसिलस* बैक्टीरिया हैं। इसके परीक्षण में रोगियों की नाक में बिना किसी दुष्प्रभाव के *लैक्टोबेसिलस* बैक्टीरिया बस गए। ***(स्रोत फीचर्स)***

मंगल पर कभी नदियां बहा करती थीं!

प्रदीप

सौरमंडल में मंगल ही इकलौता ऐसा ग्रह है जो पृथ्वी से कई समानताएं दर्शाता है। भविष्य में पृथ्वी से बाहर मानव कॉलोनी बसाने के लिए यही ग्रह सबसे उपयुक्त नज़र आता है। इसके बारे में जानकारी में वृद्धि के साथ वैज्ञानिकों और आम लोगों में इसके प्रति रुचि बढ़ी है।

लेकिन अभी भी इससे जुड़े कई अहम सवालों के जवाब मिलने बाकी हैं। जैसे, क्या कभी मंगल पर जीवन था, और अगर था तो किस रूप में था? क्या मंगल पर कभी पृथ्वी की तरह नदियां और सागर हिलोरे लेते थे? एक लंबे अरसे से इस आखरी सवाल का वैज्ञानिकों का जवाब 'हां' रहा है। और अब *नेचर कम्यूनिकेशन* में प्रकाशित शोध पत्र के मुताबिक वैज्ञानिकों की एक अंतर्राष्ट्रीय टीम को मंगल ग्रह पर एक अरब साल पहले नदियों की मौजूदगी के नए और पुख्ता संकेत मिले हैं।

वैज्ञानिकों ने नासा की दूरबीन से प्राप्त तस्वीरों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है। वैज्ञानिकों ने तस्वीरों की सहायता से मंगल ग्रह के हेलास बेसिन नामक एक बहुत बड़े गड्ढे का एक 3-डी स्थलाकृति नक्शा बनाया। वैज्ञानिकों को एक पथरीले पहाड़ की चोटी के पास गहरी तलछट जमा मिली है जो तकरीबन 200 मीटर ऊंची है। यह तलछट तेज़ बहती नदी की वजह से जमा हुई होगी। इसकी चौड़ाई करीब डेढ़ किलोमीटर है। वैज्ञानिकों का कहना है कि हम फिलहाल वहां जाकर विस्तृत जानकारी नहीं ले सकते मगर पृथ्वी की तलछटी चट्टानों (सेडीमेंटरी रॉक्स) से समानता के चलते संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है। इतने ऊंचे तलछटी निक्षेप बनने के लिए ज़रूरी है कि वहां बड़ी मात्रा में तरल पानी बहता रहा हो।

इस शोध पत्र के प्रमुख लेखक फ्रांसेस्को सेलेस का कहना है, "यह वर्षों से पता है कि मंगल ग्रह पर अरबों वर्ष पहले बहुत-सी झीलें, नदियां और संभवतः महासागर भी रहे होंगे जो जीवन के शुरुआती स्तर के अनुकूल रहे होंगे। आज मंगल के ध्रुवों पर बर्फ जमा है और उसमें बहुत ज़्यादा धूल के तूफान आते हैं। लेकिन वहां की सतह पर तरल पानी की मौजूदगी के कोई संकेत नहीं हैं। मगर 3.7 अरब साल पहले हालात इतने विषम नहीं थे और हो सकता है कि तब वहां जीवन के अनुकूल परिस्थितियां मौजूद रही हों। पृथ्वी पर तलछटी चट्टानों के अध्ययन से हम लाखों-अरबों साल पहले की स्थितियों के बारे में जानने में सफल हुए हैं। अब हम मंगल ग्रह का अध्ययन कर पा रहे हैं जहां पृथ्वी से भी पहले के समय की तलछटी चट्टानें पाई गई हैं।"

वैज्ञानिकों ने यह भी पाया है कि इन तेज़ बहती नदियों ने इन चट्टानों को हजारों-लाखों साल पहले बनाया होगा। इन चट्टानों में सूक्ष्मजीवी जीवन के प्रमाण हो सकते हैं और मंगल ग्रह के इतिहास के बारे में बहुत-सी जानकारी हासिल हो सकती है।

बहरहाल, मंगल की खोजबीन निरंतर जारी है। नासा का इनसाइट लैंडर मंगल पर सफलतापूर्वक उतर चुका है और मंगल की भूगर्भीय बनावट का अध्ययन कर रहा है। वहीं क्यूरियोसिटी रोवर छह साल से अधिक समय से गेल क्रेटर की खोजबीन कर रहा है। और नासा का भावी मार्स 2020 रोवर और युरोपियन स्पेस एजेंसी का एक्समर्स रोवर, दोनों लॉन्च होने के बाद ऐसे रोवर मिशन बन जाएंगे, जिन्हें मुख्य रूप से लाल ग्रह पर अतीत के सूक्ष्मजीवी जीवन और नदियों, सागरों की मौजूदगी के संकेतों की तलाश के लिए बनाया जाएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

जीवाश्म पर अधिकार भू-स्वामि का

हाल ही में मोन्टाना के सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले ने जीवाश्म विज्ञानियों को राहत दी है। कोर्ट ने फैसले में कहा है कि जीवाश्म कानूनी रूप से सोने-चांदी जैसे खनिजों से भिन्न हैं। इन पर आधिपत्य उसका होगा जिसकी भूमि पर वे मिले हैं, ना कि भूमि के नीचे के खनिज भंडार मालिकों का।

दरअसल, मामला पूर्वी मोन्टाना के भूभाग में साल 2006 में प्राप्त डायनासौर के दो जीवाश्मों से जुड़ा है। मरे दम्पति ने पूर्वी मोन्टाना में सेवरसन बंधुओं से ज़मीन खरीदी थी। उन्होंने निजी जीवाश्म खोजियों के साथ मिलकर उस भूखंड से *टायरानेसौरस रेक्स* के कंकाल सहित कई बड़ी खोजें कीं। जिसमें सबसे अनोखी खोज थी डायनासौर के कंकालों की एक जोड़ी, जिसे देखने पर लगता है कि वे दोनों लड़ते हुए मारे गए थे।

ज़मीन बेचते समय सेवरसन बंधु ने उक्त भूमि के नीचे दबे खनिज पर दो तिहाई मालिकाना हक अपने पास रखा था। इसलिए इस खोज के बाद उन्होंने इन जीवाश्म पर आंशिक मालिकाना हक का दावा किया। गौरतलब है कि यूएस के कुछ प्रांतों में भूमि का स्वामित्व और उसके नीचे दबे तेल, गैस या अन्य खनिजों का स्वामित्व अलग-अलग लोगों या संस्थाओं का हो सकता है। इस मामले में संघीय जिला अदालत ने मरे दम्पति के पक्ष में फैसला सुनाया। लेकिन सेवरसन बंधु की याचिका पर तीन सदस्यों की एक अदालत में दो सदस्यों ने कहा कि जीवाश्म पर अधिकार खनिज मालिकों का है। पुनः सुनवाई की गुहार लगाने पर अदालत ने सुनवाई के पहले मामला मोन्टाना सुप्रीम कोर्ट भेज दिया। शीर्ष अदालत ने पिछले फैसले को पलटते हुए कहा कि उसमें 'जीवाश्म' और 'खनिज' को एक श्रेणी में रखने की गलती की गई थी। शब्दों के सामान्य और व्यावहारिक अर्थ के अनुसार मरे दम्पति की भूमि पर प्राप्त डायनासौर के जीवाश्म खनिज नहीं हैं।

यह फैसला वैज्ञानिकों के लिए एक जीत है। वैज्ञानिकों की चिंता थी कि यदि जीवाश्मों को खनिज अधिकारों के साथ जोड़कर देखा जाएगा तो खुदाई करने की अनुमति प्राप्त करना मुश्किल हो सकता है और जो जीवाश्म पहले प्राप्त हो चुके हैं उनके मालिकाना हक पर भ्रम पैदा हो सकता है।

हालांकि 2019 में ही मोन्टाना विधायिका ने एक कानून पारित कर दिया था जिसके तहत कहा गया था कि जीवाश्म पर अधिकार भू-स्वामियों का होगा। अब कोर्ट का यह फैसला हक की इस जंग का अंतिम वार रहा।

इंडियाना युनिवर्सिटी के जीवाश्म विज्ञानी डेविड पॉली कहते हैं कि हालांकि यह फैसला अन्य राज्यों पर लागू नहीं होता लेकिन यह फैसला इस मायने में अहमियत रखता है कि यदि ऐसे मुद्दे फिर उठे तो इस फैसले को नज़ीर के तौर पर पेश किया जा सकता है।

इस फैसले से उक्त जीवाश्म की बिक्री का रास्ता साफ हो जाएगा जिसका अनुबंध मरे दम्पति ने एक म्यूज़ियम से किया है। इससे वैज्ञानिकों को एक और बड़ी राहत मिलेगी कि डायनासौर के जीवाश्म निजी संग्रहकर्ताओं के हाथ में जाने से बच जाएंगे। ***(स्रोत फीचर्स)***

टेलीफोन केबल से भूकंप संवेदन

कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी के भूकंप विज्ञानी जोंगवेन ज़ान ने नववर्ष विचित्र अंदाज़ में मनाया। उन्होंने नववर्ष के जश्न के दौरान बैंड की तेज़ ध्वनि से उत्पन्न कंपन को ज़मीन के नीचे दबे प्रकाशीय तंतुओं की मदद से रिकॉर्ड किया। गौरतलब है कि टीवी, फोन और इंटरनेट के लिए प्रकाशीय तंतु केबल का उपयोग होता है। इन महीन तारों का नेटवर्क शहरों में किसी पेड़ की जड़ों की तरह फैला है। इन तारों के भीतर कांच के कई अत्यंत बारीक तंतुओं में प्रकाश की मदद से डैटा प्रसारित किया जाता है। एक समय पर सारे तंतुओं का उपयोग नहीं होता। ऐसे 'निष्क्रिय तंतुओं' का उपयोग सस्ते भूकंप संवेदी के रूप में किया जा सकता है।

ज़ान की टीम ने स्थानीय अधिकारियों से 37 किलोमीटर लंबे केबल के दो स्ट्रैंड उपयोग करने की अनुमति ली हुई थी। उन्होंने दोनों स्ट्रैंड के एक-एक छोर पर लेज़र लगा दिया जो अवरक्त प्रकाश छोड़ता था। इनमें से अधिकांश प्रकाश तो फाइबर के रास्ते आगे बढ़ा लेकिन कुछ हिस्सा फाइबर में नुक्स के कारण परावर्तित हो गया। शोधकर्ताओं ने इस परावर्तित प्रकाश के वापिस पहुंचने के समय को भी अपने उपकरणों में दर्ज किया। ज़ान के अनुसार फाइबर में खराबी के कारण प्रतिध्वनि सुनाई देती है।

कई बार मापन करके शोधकर्ताओं ने प्रतिध्वनि के पहुंचने के समय में अंतर को देखा। इसके आधार पर वे बता पा रहे थे कि कंपन कब प्रकाशीय तंतु के उस खंड को खींचकर थोड़ा लंबा कर देते हैं। उपकरणों की मदद से फाइबर में एक मीटर खंड की लंबाई में एक अरबवें हिस्से के फैलाव का पता लगाया सकता है। तो आपके पास हज़ारों संवेदी उपकरण मौजूद हैं।

इस तकनीक को डिस्ट्रिब्यूटेड एकूस्टिक सेंसिंग कहते हैं और पूर्व में इसका उपयोग सेना द्वारा पनडुब्बियों को ताड़ने में किया जाता था। अब इनका उपयोग हर उस काम में किया जा सकता जहां कंपन शामिल हैं, जैसे भूकंप की निगरानी में।

अलबत्ता, ज़ान और अन्य शोधकर्ता भविष्य में इसके व्यापक उपयोग को लेकर चर्चा कर रहे हैं। इसका उपयोग न केवल भूकंपों की निगरानी के लिए किया जा सकता है बल्कि ट्रैफिक पैटर्न को रिकॉर्ड करने, ज़मीन के नीचे दबी पाइप लाइन में रिसाव का पता लगाने और अनधिकृत प्रवेश का पता लगाने के लिए किया जा सकता है। ज़ान का मानना है कि इस प्रणाली को लॉस एंजिलिस जैसे बड़े शहरों में निकट भविष्य में अपनाया जा सकता है जहां पहले से हज़ारों किलोमीटर का फाइबर नेटवर्क मौजूद है। ***(स्रोत फीचर्स)***

लॉकडाउन के बावजूद कार्बन उत्सर्जन में कमी नहीं

कोरोनावायरस को थामने के लिए विश्व भर के लगभग 4 अरब लोग तालाबंदी में हैं। इस विशाल संख्या को देखते हुए ग्रीनहाउस गैसों में कमी नगण्य जान पड़ रही है। यदि यह माना जाए कि सकल घरेलू उत्पाद और कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन के बीच समानुपाती सम्बंध है तो वर्तमान अति-भयानक आर्थिक गिरावट के रूबरू कार्बन डाईऑक्साइड के उत्सर्जन में जिस कमी का अनुमान लगाया जा रहा है वह कुछ नहीं है।

भविष्यवेत्ताओं अनुसार वर्ष 2020 में उत्सर्जन में 5 प्रतिशत से अधिक गिरावट की उम्मीद है लेकिन यह लक्ष्य से काफी कम है। वैज्ञानिकों का मत है कि आने वाले दशक में पृथ्वी के तापमान में वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित रखने के लिए यह दर कम से कम 7.6 प्रतिशत वार्षिक की होनी चाहिए। तो यह सवाल स्वाभाविक है कि इतिहास की सबसे भयानक आर्थिक गिरावट के दौरान भी भविष्यवेत्ता कार्बन डाईऑक्साइड के स्तर में काफी गिरावट की भविष्यवाणी क्यों नहीं कर रहे हैं?

इसका उत्तर उत्सर्जन के पूर्वानुमान लगाने के तरीकों, हमारी ऊर्जा प्रणाली की संरचना और इस बात में निहित है कि कैसे यह महामारी अन्य मंदियों से अलग ढंग की आर्थिक गिरावट पैदा कर रही है।

कार्बन ब्रीफ नामक एक शोध समूह के अनुसार चीन में शुरुआती कामबंदी के 4 हफ्तों के दौरान कार्बन उत्सर्जन में 25 प्रतिशत की गिरावट आई थी लेकिन दोबारा से सामान्य

जीवन शुरू होने पर यह उत्सर्जन फिर से शुरू हो गया। इसी तरह रोडियम नामक संस्था के मुताबिक अमेरिका में भी 15 मार्च से 14 अप्रैल 2020 के बीच पिछले वर्ष उसी अवधि की तुलना में उत्सर्जन में 15-20 प्रतिशत की कमी आई थी।

फिर भी वार्षिक अनुमानों में किसी बड़ी कटौती की उम्मीद व्यक्त नहीं की जा रही है। अधिकांश भविष्यवेत्ताओं का मानना है कि इस वर्ष के उत्तरार्ध में अर्थव्यवस्था में पुनः उछाल आएगा और उत्सर्जन बढ़ सकता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश (आईएमएफ) ने वैश्विक अर्थव्यवस्था में 3 प्रतिशत और अमेरिका के जीडीपी में 6 प्रतिशत की गिरावट की आशंका व्यक्त की है लेकिन उसके अनुसार भी 2020 की दूसरी छमाही में सुधार उम्मीद है।

हो सकता है कि यह आशावादी हो। अनुमान है कि दुनिया के कुछ हिस्सों में तालाबंदी 2020 में पूरे साल जारी रहेगी लेकिन कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन में मार्च-अप्रैल जैसी गिरावट शायद जारी न रहे।

ग्लोबल कार्बन प्रोजेक्ट के अनुसार 2010 से 2018 के बीच वैश्विक उत्सर्जन में औसत 0.9 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। अमेरिका में, 2005 से अब तक, उत्सर्जन में 0.9 प्रतिशत वार्षिक की कमी हुई है और 2019 में तो 2.1 प्रतिशत की गिरावट दर्ज हुई। ऐसे में उत्सर्जन में 25 प्रतिशत की गिरावट के परिदृश्य में भी तीन-चौथाई वैश्विक कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन तो एक साल की तालाबंदी में भी जारी रहेगा।

रोडियम समूह के जलवायु और ऊर्जा अनुसंधान के प्रमुख ट्रेवर हाउसर इस तालाबंदी और आर्थिक मंदी के बीच अंतर स्पष्ट करते हैं। आम तौर पर आर्थिक मंदी में कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन में गिरावट मैन्यूफेक्चरिंग (विनिर्माण) और शिपिंग में गिरावट के कारण होती है। लेकिन वर्तमान में इसका विपरीत हुआ है। शिपिंग गतिविधियों में तो कोई कमी नहीं आई और विनिर्माण कार्य काफी धीमा होने में वक्त लगा। तालाबंदी के दौरान भी चीन में कई स्टील और कोयला संयंत्र कम स्तर पर जारी रहे।

उत्सर्जन में कमी विशेष तौर पर भूतल परिवहन में रिकॉर्ड गिरावट के कारण आ रही है। यू.के. के यातायात में 54 प्रतिशत, अमेरिका में 36 प्रतिशत और चीन में 19 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई है। इसके साथ ही चीन में कोविड-19 के प्रथम 500 मामले सामने आने के बाद हवाई यात्रा में 40 प्रतिशत की गिरावट आई जबकि युरोप में 10 में से 9 उड़ानों को रोक दिया गया।

इसके परिणामस्वरूप जेट ईंधन की मांग में 65 प्रतिशत की गिरावट आई। डिपार्टमेंट ऑफ एनर्जी स्टेटिस्टिक्स के अनुसार अमेरिका में 4 हफ़्तों में गैसोलीन की मांग में 41 प्रतिशत की गिरावट हुई। इंटरनेशनल एनर्जी एजेंसी के अनुसार अप्रैल माह में प्रतिदिन गैसोलीन की मांग में 1.1 करोड़ बैरल और मई में 1 करोड़ बैरल की कमी आएगी। फिर भी वैश्विक अर्थव्यवस्था काफी अधिक तेल का उपभोग कर रही है।

एजेंसी के अनुसार पूरे विश्व में इस वर्ष की दूसरी तिमाही में 7.6 करोड़ बैरल प्रतिदिन का उपयोग किया जाएगा। गैसोलीन और जेट ईंधन की मांग में कमी के बाद भी अमेरिका की तेल कंपनियों से पिछले 4 हफ्तों में 55 लाख बैरल तेल बाज़ार पहुंचाया गया। डीज़ल की मांग में भी कमी आई है लेकिन शिपिंग और मालवाहक जहाज़ों में उपयोग जारी रहने से केवल 7 प्रतिशत की गिरावट ही दर्ज की गई है। पेट्रोकेमिकल क्षेत्र में भी प्रभाव एकरूप नहीं हैं। ऑटो विनिर्माण में उपयोग होने वाले प्लास्टिक में तो कमी आई है लेकिन खाद्य सामग्री की पैकेजिंग में इसका उपयोग जारी है। एजेंसी का मानना है कि ईथेन और नेफ्था जैसे प्लास्टिक फीडस्टॉक की मांग साल के अंत तक कम हो जाएगी लेकिन गैसोलीन और डीज़ल के समान नहीं। .

ग्लोबल कार्बन प्रोजेक्ट के अनुसार 2019 में उत्सर्जन 0.6 प्रतिशत बढ़कर कुल 36.8 गीगाटन हो गया है। कुल उत्सर्जन में परिवहन का हिस्सा लगभग 20 प्रतिशत था, जिसमें से आधा सड़क परिवहन का है। वैसे यह 20 प्रतिशत काफी बड़ी संख्या है लेकिन बाकी के 80 प्रतिशत में अभी भी कोई भारी कमी नहीं आई है। इससे पता चलता है कि तेल हमारी अर्थ व्यवस्था में किस कदर गूंथा हुआ है। सारी कारें खड़ी हो जाएं, फिर भी तेल की खपत तो होती ही रहेगी।

इस महामारी में बड़ी कमी परिवहन के क्षेत्र में आई है। कोयले के उपयोग में कमी तो आई है लेकिन दुनिया भर में बिजली उत्पादन इसी पर निर्भर करता है। वैश्विक कार्बन

डाईऑक्साइड का 40 प्रतिशत उत्सर्जन कोयले से होता है जो किसी अन्य ईंधन की तुलना में सबसे अधिक है। भारत में नेशनल ग्रिड संचालन के दैनिक आंकड़ों से पता चलता है कि अप्रैल में कोयला-आधारित बिजली उत्पादन प्रतिदिन 1.9 गिगावॉट-घंटे था जबकि 24 मार्च (जिस दिन लॉकडाउन शुरू हुआ) के दिन 2.3 गिगावॉट-घंटे था। तेल की तरह यह भी आर्थिक उत्पादन में केंद्रीय भूमिका निभाता है।

ब्रेकथ्रू इंस्टिट्यूट में जलवायु और उर्जा निदेशक ज़ेके हॉसफादर के अनुसार यह महामारी विश्व के विकासशील हिस्सों के लिए स्वच्छ उर्जा को सस्ती बनाने की आवश्यकता को रेखांकित करती है। अर्थव्यवस्था को कार्बन-मुक्त करने के लिए टेक्नॉलॉजी की आवश्यकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

वनों की ग्रीनहाउस गैस सोखने की क्षमता घट सकती है

कार्बन डाइऑक्साइड के बढ़ते स्तर से बचाव का सबसे अच्छा साधन ऊष्णकटिबंधीय वन हैं। पेड़ वृद्धि के लिए वातावरण से कार्बन डाईऑक्साइड सोखते हैं। एक अनुमान के मुताबिक ऊष्णकटिबंध के जंगलों में इतना कार्बन संचित है जितना इंसानों ने पिछले तीस वर्षों में कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस जलाकर वायुमंडल में उंडेला है। लेकिन *साइंस* पत्रिका में वैज्ञानिकों ने चिंता व्यक्त की है कि बढ़ते तापमान और सूखे के कारण एक हद के बाद ऊष्णकटिबंधीय वनों की कार्बन-सिंक भूमिका कमज़ोर हो जाएगी और अंततः वे बढ़ते वैश्विक तापमान में योगदान देंगे।

ऊष्णकटिबंधीय वन वायुमंडल से कितना कार्बन सोखेंगे यह कार्बन डाईऑक्साइड बढ़ने से पेड़ों की वृद्धि में तेज़ी और बढ़ते तापमान व सूखे के कारण पेड़ों के तनाव व मृत्यु के संतुलन पर निर्भर करता है। इसी संतुलन को आंकने के लिए लीड्स युनिवर्सिटी के ओलिवर फिलिप्स की अगुवाई में 200 से अधिक शोधकर्ताओं ने 24 देशों के 813 वनों के लगभग 5 लाख से अधिक पेड़ों को मापा। प्रत्येक पेड़ की ऊंचाई, मोटाई और प्रजाति के आधार पर गणना की कि अलग-अलग वन अभी कितना कार्बन संचित किए हुए हैं। भविष्य में कार्बन संचय कैसे बदल सकता है, इसका अनुमान लगाने के लिए शोधकर्ताओं ने सबसे गर्म वन को भविष्य के वन माना और विभिन्न जलवायु के वनों को विभिन्न काल के वन मानकर उनके कार्बन संचय की तुलना की। तुलना के लिए उनके पास 590 दीर्घकालीन निरीक्षण प्लॉट्स के आंकड़े भी थे। वे देखना चाहते थे कि तापमान और बारिश की मात्रा का कार्बन संचय क्षमता पर कैसा प्रभाव होता है।

पूर्व में हुए अध्ययन बताते हैं कि रात का न्यूनतम तापमान वनों की दीर्घकालीन कार्बन संचय क्षमता पर सबसे अधिक प्रभाव डालता है क्योंकि गर्म रातें पेड़ों की श्वसन दर बढ़ाती हैं। इसके चलते पेड़ अधिक कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं। लेकिन इस अध्ययन में पाया गया कि दिन का अधिकतम तापमान पेड़ों की कार्बन संचय क्षमता को सबसे अधिक प्रभावित करता है क्योंकि शायद गर्म दिनों में पत्तियां पानी के उत्सर्जन को कम रखने के लिए अपने छिद्रों को बंद रखती हैं, जिसके चलते कार्बन डाईऑक्साइड ग्रहण करने की प्रक्रिया भी धीमी पड़ जाती है।

अध्ययन में पाया गया कि कुल मिलाकर वतर्मान में तो वन जितना कार्बन उत्सर्जित करते हैं उससे अधिक सोख रहे हैं। लेकिन जब साल के सबसे गर्म महीने में दिन का औसत अधिकतम तापमान 32.2 डिग्री सेल्सियस होगा, वनों की दीर्घकालीन कार्बन संचय क्षमता तेज़ी से कम होगी और उनके द्वारा छोड़े गए कार्बन की मात्रा बढ़ जाएगी। सूखे वनों में कार्बन संचय की क्षमता और भी कम होगी क्योंकि पानी की कमी पेड़ों को अधिक तनाव और मृत्यु की ओर धकेलेगी।

टीम की गणना बताती है कि विश्व के अधिकतम तापमान में प्रत्येक 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होने पर ऊष्णकटिबंधीय वनों की कार्बन भंडारण क्षमता में 7 अरब टन की कमी आती है। यदि वैश्विक तापमान, पूर्व-औद्योगिक स्तर से 2 डिग्री सेल्सियस अधिक हो जाता है तो 71 प्रतिशत ऊष्णकटिबंधीय वन इस हद को पार कर जाएंगे, जिससे पेड़ों द्वारा कार्बन का उत्सर्जन चार गुना बढ़ जाएगा।

शोधकर्ता इन नतीजों को चेतावनी के रूप में देख रहे हैं। वैश्विक तापमान लगभग 1 डिग्री सेल्सियस बढ़ चुका है। जल्दी कुछ करना होगा, इससे पहले कि बहुत देर हो जाए ***(स्रोत फीचर्स)***

सांडाः मरुस्थलीय भोजन श्रृंखला का आधार

चेतन मिशर

सांडा पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तान में पाई जाने वाली छिपकली है, जो मरुस्थलीय खाद्य श्रृंखला में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परंतु आज अंधविश्वास और अवैध शिकार के चलते यह घोर संकट का सामना कर रही है।

सांडे का तेल, भारत के विभिन्न हिस्सों मे यौनशक्ति वर्धक एवं शारीरिक दर्द के उपचार के लिए अत्यधिक प्रचलित औषधि है। वैसे, इस तेल का कारगर होना एक अंधविश्वास मात्र है एवं इस तेल के रासायनिक गुण किसी भी अन्य जीव की चरबी के तेल के समान ही पाए गए हैं। इस अंधविश्वास के कारण इस जीव का बड़ी संख्या में अवैध शिकार किया जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप सांडों की आबादी तेज़ी से घट रही है।

सांडा के नाम से जाना जाने वाला यह सरीसृप वास्तव में भारतीय उपमहाद्वीप के शुष्क प्रदेशों में पाई जाने वाली एक छिपकली है। यह मरुस्थलीय छिपकली Agamidae वर्ग की एक सदस्य है तथा अपने मज़बूत एवं बड़े पिछले पैरों के लिए जानी जाती है। सांडा का अंग्रेजी नाम *Spiny-tailed lizard* है जो इसे इसकी पूंछ पर पाए जाने वाले कांटेदार शल्क के अनेक छल्लों की श्रृंखला के कारण मिला है।

विश्व भर में सांडे की 20 प्रजातियां पाई जाती हैं। यह उत्तरी अफ्रीका से लेकर मध्य-पूर्व के देशों एवं उत्तरी-पश्चिमी भारत के शुष्क तथा अर्धशुष्क प्रदेशों के घास के मैदानों में वितरित हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में पाई जाने वाली इस प्रजाति का वैज्ञानिक नाम *Saara hardiwickii* है। यह मुख्यतः अफगानिस्तान, पाकिस्तान तथा भारत में उत्तर-पश्चिमी राजस्थान, हरियाणा एवं गुजरात के कच्छ ज़िले के शुष्क घास के मैदानों में पाई जाती है। कुछ शोध पत्रों के अनुसार सांडे की कुछ छोटी आबादियां उत्तर प्रदेश, उत्तरी कर्नाटक तथा पूर्वी राजस्थान में भी पाई जाती हैं। वन्य जीव विशेषज्ञों के अनुसार सांडे का मरुस्थलीय आवास से बाहर वितरण मानवीय गतिविधियों का परिणाम हो सकता है क्योंकि वन्य जीव व्यापार में अनेकों जीवों को उनकी

स्थानीय सीमाओं से बाहर ले जाया जाता है।

सांडे की भारतीय प्रजाति में नर (40 से 49 से.मी.) सामान्यतः आकार में मादा (34 से 40 से.मी.) से बड़े होते हैं तथा अपनी लंबी पूंछ के कारण आसानी से पहचाने जा सकते हैं। नर की पूंछ उसके शरीर की लंबाई के बराबर या अधिक एवं छोर पर नुकीली होती है जबकि मादा की पूंछ शरीर की लंबाई से छोटी तथा सिरे पर मोटी होती हैं।

पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तान एवं कच्छ के नमक के मैदानों में पाई जाने वाली सांडे की आबादी में त्वचा के रंग में एक अंतर देखने को मिलता हैं। अक्सर पश्चिमी राजस्थान की आबादी में पूंछ के दोनों तरफ के शल्क में तथा पिछले पैरों की जांघों के दोनों ओर हल्का चमकीला नीला रंग देखा जाता है, परंतु कच्छ के नमक मैदानों की आबादी में ऐसा नहीं होता।

भारतीय सांडे को भारत में पाई जाने वाली एकमात्र शाकाहारी छिपकली माना जाता है। इनके मल के नमूनों की जांच के अनुसार वयस्क का आहार मुख्यतः वनस्पति, घास, एवं पत्तियों तक सीमित रहता है लेकिन शिशु सांडा वनस्पति के साथ कीटों, मुख्यतः भृंग, चींटी, दीमक, एवं टिड्डों, का सेवन भी करते हैं। बारिश में एकत्रित किए गए कुछ वयस्क सांडों के मल में भी कीटों का मिलना इनकी अवसरवादिता को दर्शाता है।

मरुस्थल में भीषण गर्मी के प्रभाव से बचने के लिए सांडे भी अन्य मरुस्थलीय जीवों के समान भूमिगत मांद में

रहते हैं। सांडे की मांद का प्रवेश द्वार बढ़ते चंद्रमा के आकार समान होता है तथा यह अन्य मरुस्थलीय जीवों की मांद से अलग दिखाई पड़ती है। मांद अक्सर टेढ़ी-मेढ़ी, सर्पिलाकार तथा 2 से 3 मीटर गहरी होती है। मांद का आंतरिक तापमान बाहर की तुलना में काफी कम होता है।

यह छिपकली दिनचर होती है तथा मांद में आराम करते समय अपनी कांटेदार पूंछ से प्रवेश द्वार को बंद रखती हैं। रात में अन्य जानवरों, विशेषकर परभक्षी जीवों, को रोकने के लिए प्रवेश द्वार को मिट्टी से बंद भी कर देती है।

मांद बनाना रेगिस्तान की कठोर जलवायु में जीवित रहने के लिए एक आवश्यक कौशल है। पैदा होने के कुछ ही समय बाद सांडे के शिशु मादा के साथ भोजन की तलाश के साथ-साथ मांद की खुदाई सीखना भी शुरू कर देते हैं। अन्य सरीसृपों के समान सांडे भी अत्यधिक सर्दी के समय दीर्घकाल के लिए शीतनिद्रा में चले जाते हैं। इस दौरान ये अपनी शरीर की चयापचय क्रिया को धीमी कर शरीर में संचित वसा पर ही जीवित रहते हैं। वैसे कच्छ के घास के मैदानों में शिशु सांडों को दिसम्बर-जनवरी में भी सक्रिय देखा गया हैं। इसका कारण कच्छ में सर्दियों में तापमान की गिरावट में अनियमितता हो सकता है।

सांडों का प्रजनन काल फरवरी से शुरू होता है और छोटे शिशुओं को जून-जुलाई तक घास के मैदानों में उछल-कूद करते देखा जा सकता है। वर्ष के सबसे गर्म समय में भी ये छिपकलियां दिनचर बनी रहती हैं। गर्मी के दिनों में तेज़ धूप खिलने पर ये दोपहर तक ही सक्रिय रहते हैं। यदि किसी दिन बादल छाए रहें तो शाम तक भी सक्रिय रहते हैं।

सांडा मरुस्थलीय खाद्य श्रृंखला का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है तथा यह खाद्य पिरामिड के सबसे निचले स्तर पर आता हैं। शरीर में ग्लायकोजन और वसा की अधिक मात्रा के चलते ये रेगिस्तान में कई परभक्षी जीवों का प्रमुख भोजन हैं। सांडे को भूमि तथा हवा दोनों तरफ से परभक्षी खतरों का सामना करना पड़ता है। मरुस्थल में पाए जाने वाले परभक्षी जीवों की विविधता सांडों की बड़ी आबादी का ही परिणाम है। हैरियर और फाल्कन जैसे शिकारी पक्षियों को अक्सर इन छिपकलियों का शिकार करते देखा जा सकता है। बड़े शिकारी पक्षी ही नहीं, किंगफिशर जैसे छोटे पक्षी भी नवजात सांडों का शिकार करने से नहीं चूकते।

पक्षियों के अलावा अनेकों सरीसृप भी रेगिस्तान में इस उच्च ऊर्जावान खाद्य स्रोत को प्राप्त करने का अवसर नहीं गंवाते। थार रेगिस्तान में विषहीन दोमुंहा सांप (Red sand-boa) अक्सर सांडे को मांद से बाहर खदेड़ते हुए देखा जा सकता है। दोमुंहे द्वारा मांद में हमला करने पर सांडे के पास अपने पंजों से ज़मीन पर मज़बूत पकड़ बनाने एवं मांद के संकरेपन के अलावा अन्य कोई सुरक्षा उपाय नहीं होता। हालांकि सांडे को मांद से बाहर निकालना बिना हाथ पैर वाले जीव के लिए आसान काम नहीं होता लेकिन यह प्रयास व्यर्थ नहीं है क्योंकि एक सफल शिकार का इनाम ऊर्जा युक्त भोजन होता है। शाम को सक्रिय होने वाली मरु-लोमड़ी भी अक्सर सांडे को मांद से खोदकर शिकार करते देखी जा सकती है।

परभक्षी जीवों की ऐसी विविधता के कारण सांडे ने भी जीवित रहने के लिए सुरक्षा के कई तरीके विकसित किए हैं। हालांकि इसके पास कोई आक्रामक सुरक्षा प्रणाली तो नहीं हैं परंतु इसका छलावरण, फुर्ती एवं सतर्कता इसके प्रमुख सुरक्षा उपाय हैं। इसकी त्वचा का रंग रेत एवं सूखी घास के समान होता है जो आसपास के परिवेश में अच्छी तरह घुल-मिल जाता है।

यदि छलावरण काम नहीं करता, तो शिकारियों से बचने के लिए यह अपनी गति पर निर्भर रहता है। सांडा की पीछे की टांगें मज़बूत तथा उंगलियां लंबी होती हैं जो इसे उच्च गति प्राप्त करने में मदद करती है। इसके अलावा, यह छिपकली भोजन की तलाश के दौरान बेहद सतर्क रहती है, विशेष रूप से जब शिशुओं के साथ हो। वयस्क छिपकली आगे के पैरों के बल सर को ऊपर उठाकर, धनुषाकार पूंछ के साथ आसपास की हलचल पर नज़र रखती है। सांडा अक्सर अपने बिल के निकट ही खाना ढूंढते हैं और मामूली-सी हलचल से ही खतरा भांप कर निकट की मांद मे भाग जाते हैं।

सांडे अक्सर समूहो में रहते हैं तथा अपनी मांद एक-दूसरे से निश्चित दूरी पर ही बनाते हैं। प्रजनन काल में अक्सर नरों को मादाओं के लिए मुकाबला करते देखा जा सकता है। नर अपने इलाके को लेकर सख्त क्षेत्रीयता प्रदर्शित करते हैं तथा अन्य नर के प्रवेश पर आक्रामक व्यवहार दिखाते हैं।

अवैध शिकार एवं खतरे

अलबत्ता, मनुष्यों से सांडा को बचाने में छलावरण, गति और सतर्कता पर्याप्त प्रतीत नहीं होती हैं। सांडे के इलाकों में इनके अंधाधुंध शिकार की घटनाएं अक्सर सामने आती रहती हैं। इस छिपकली को पकड़ने के लिए शिकारी भी कई तरीके इस्तेमाल करते हैं। सबसे सामान्य तरीके में सांडे की मांद में गरम पानी भरकर या मांद को खोदकर उसे बाहर आने के लिए मजबूर किया जाता है।

एक अन्य तरीके में शिकारी सांडे की मांद के प्रवेश द्वार पर एक रस्सी का फंदा लगा देते हैं तथा उसके दूसरे छोर को छोटी लकड़ी के सहारे ज़मीन में गाड़ देते हैं। जब सांडा अपनी मांद से बाहर निकलता है तो फंदा उसके सिर से निकलते हुए पैरों तक आ जाता हैं तथा जैसे ही सांडा वापस मांद में जाने की कोशिश करता है, फंदा उसके शरीर पर कस जाता है। फिर सांडे को पकड़कर उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़ दी जाती है ताकि वह भाग न सके।

सांडे को भारतीय वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 की अनुसूची 2 में रखा गया है, जो इसके शिकार पर पूर्ण प्रतिबंध लगाता है। यह जंगली वनस्पतियों और जीवों की लुप्तप्राय प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की संधि के परिशिष्ट द्वितीय में शामिल है। हालांकि वन्य जीवों के व्यापार के मुद्दे पर कार्यरत संस्था ट्राफिक की एक रिपोर्ट के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में 1997 से 2001 के बीच सांडों की सभी प्रजातियों के कुल व्यापार में भारतीय सांडे का हिस्सा का मात्र दो प्रतिशत था, लेकिन इस प्रजाति को क्षेत्रीय स्तर पर शिकार के गंभीर खतरों का सामना करना पड़ रहा है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भारतीय सांडे का छोटा हिस्सा इसके कम शिकार का द्योतक नहीं है, अपितु इसकी अधिक स्थानीय खपत दर्शाता है।

हाल ही में बैंगलुरु के कोरमंगला क्षेत्र से पकड़े गए कुछ शिकारियों के अनुसार सांडे के मांस एवं रक्त की स्थानीय स्तर पर यौनशक्ति वर्धक के रूप में अत्यधिक मांग है। पकड़े गए गिरोह का सम्बंध राजस्थान के जैसलमेर ज़िले से था, जहां पर सांडे अभी भी बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। इस तरह के गिरोहों का नेटवर्क कितना फैला हुआ है, कोई नहीं जानता। आम जन में जागरूकता की कमी एवं अंधविश्वास के कारण सांडों को अक्सर कई स्थानीय बाज़ारों में खुले बिकते भी देखा जाता है। प्रशासन की सख्ती के साथ-साथ आम जनता में जागरूकता सांडों के सुरक्षित भविष्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा भारतीय चीते के समान यह अनोखा प्राणी भी जल्द ही किताबों व डॉक्यूमेंटरी में सिमटकर रह जाएगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

कॉम्ब जेली का जाड़ों का भोजन उन्हीं के बच्चे

स्थानीय स्तर पर समुद्री अखरोट के नाम से विख्यात कंघे जैसे आकार वाली गिजगिजिया या कॉम्ब जेली (*Mnemiopsis leidyi*) जीव मूलतः उत्तर-पश्चिमी अटलांटिक महासागर की वासी है। लेकिन हाल के दशकों में मालवाहक जहाज़ों के बेलास्ट पानी (जहाजों को स्थिर रखने के लिए भरे गए पानी) में सवार होकर ये युरोपीय सागरों में फैल गई हैं। बाल्टिक सागर के पश्चिमी हिस्से में गर्मियों के आखिर में इनकी आबादी में उछाल आता है और ये मछलियों के अंडे और लार्वा और छोटे क्रस्टेशियन जीवों सहित समुद्री खाद्य शृंखला के आधार जीवों का खाकर सफाया कर डालती है। लेकिन सर्दियों के लिए जमा करके रखने हेतु भी इन्हें ढेर सारा भोजन चाहिए। *कम्युनिकेशन बॉयोलॉजी* में प्रकाशित अध्ययन के अनुसार उस समय इनके भोजन का सबसे बड़ा स्रोत उनकी अपनी संतानें होती हैं।

डेनमार्क के नज़दीक फ्योर्ड क्षेत्र में इनके अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया था कि ज़रूरत पड़ने पर वयस्क कॉम्ब जेली अपनी ही प्रजाति के लार्वा को खा लेते हैं। इन अवलोकनों के बाद शोधकर्ताओं ने कॉम्ब जेली पर प्रयोगशाला में अध्ययन किया और वहां भी उन्हें यही परिणाम मिले।

गर्मियों में अपनी ही संतानों को खाने की उनकी यह प्रवृत्ति इस रहस्य को सुलझाने में मदद कर सकती है कि क्यों गर्मियों के अंत में कॉम्ब जेली इतने अधिक लार्वा पैदा करती है, जबकि आने वाले जाड़े में इन लार्वा के जीवित बचने की संभावना भी नहीं होती। शोधकर्ताओं का अनुमान है कि गर्मियों के अंत में बड़ी संख्या में लार्वा का भक्षण वयस्क कॉम्ब जेली को 2-3 हफ्ते का पोषण उपलब्ध

कराता है। इस तरह उन्हें सर्दियों में 80 दिनों तक जीवित रहने के लिए पर्याप्त भोजन का भंडार मिल जाता है।

हालांकि शोधकर्ताओं का कहना है कि वे पूरी तरह से इस ऊर्जा संतुलन को समझ नहीं पाए हैं। क्योंकि एक ओर तो वयस्क कॉम्ब जेली को लार्वा पैदा करने में बहुत ऊर्जा लगती है, और ये लार्वा सर्दियों में जीवित भी नहीं रह पाते। दूसरी ओर, ये लार्वा खाद्य शृंखला के निचले स्तर से काफी सारा भक्षण करके इन वयस्कों के लिए भोजन का स्रोत बन जाते हैं, जो वयस्कों को जाड़ों में काम आता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

किशोर कुत्तों का व्यवहार मानव किशोर जैसा

कुछ लोगों का अनुभव है कि जब उनके कुत्ते किशोरावस्था में पहुंचते हैं तो वे अचानक उनके हुक्म मानना बंद कर देते हैं। यह भी कहा जाता है कि किशोर उम्र के कुत्तों का व्यवहार शिशु, वयस्क या वृद्ध कुत्तों से भिन्न होता है। और अब *बायोलॉजी लेटर्स* में प्रकाशित एक ताज़ा अध्ययन बताता है कि मानव किशोरों की तरह कुत्ते भी किशोरावस्था के दौरान अति संवेदनशील होते हैं।

न्यू कासल युनिवर्सिटी की जीव व्यवहार विज्ञानी लुसी एशर बताती हैं कि मनुष्यों के साथ कुत्तों के पिल्लों का लगाव बिल्कुल मानव शिशु जैसा होता है। लेकिन अधिकांश मालिकों को लगता है कि कुत्तों की उम्र 8 महीने की (श्वान-किशोरावस्था) होने पर उनके कुत्तों का व्यवहार बदल जाता है। मानव किशोरों की तरह किशोर कुत्ते भी अपने मालिकों की उपेक्षा और अवज्ञा करने लगते हैं। इस व्यवहार पर मालिक तरह-तरह की प्रतिक्रिया देते हैं: कुछ उन्हें सज़ा देते हैं, कुछ उपेक्षा करते हैं, तो कुछ उन्हें दूर भेज देते हैं।

किशोरावस्था कैसे कुत्तों का व्यवहार बदलती है, यह जानने के लिए एशर और उनकी टीम ने 70 कुत्तों पर नज़र रखी। अध्ययनकर्ताओं ने उनके मालिकों को उनके साथ लगाव और ध्यान खींचने वाले व्यवहार (जैसे मालिक से सटकर बैठना या किसी व्यक्ति के प्रति विशेष लगाव) और उपेक्षित होने पर व्यवहार (जैसे पीछे छूट जाने पर सिहरन या कंपकंपी) के आधार पर अंक देने को कहा। ये दोनों तरह के व्यवहार चिंता और भय के द्योतक हैं।

जिन पिल्लों को दोनों में से किसी भी एक पैमाने पर अधिक अंक मिले थे उनकी किशोरावस्था भी जल्दी शुरू हुई (लगभग 5 माह की उम्र में) जबकि कम अंक वाले पिल्लों की किशोरावस्था 8 माह की उम्र यानी देर से शुरू हुई। यह देखा गया है कि जिन लड़कियों के अपने अभिभावकों से रिश्ते अच्छे नहीं होते उनकी किशोरावस्था जल्दी शुरू हो जाती है। मनुष्यों की तरह, जिन कुत्तों के उन्हें पालने वालों के साथ सम्बंध अच्छे नहीं थे उनके प्रजनन चक्र में अंतर आया।

यह भी देखा गया कि जो किशोर कुत्ते अपने पालकों के विछोह से दुखी थे उन्होंने अपने पालकों की बात नहीं मानी जबकि अन्य व्यक्ति की बात मानी। यह व्यवहार मानव किशोरों की असुरक्षा की भावना से मेल खाता है।

एक अन्य अध्ययन में अध्ययनकर्ताओं ने अन्य 69 गाइड कुत्तों का 5 महीने और 8 महीने की उम्र के दौरान अध्ययन किया। उन्होंने उनके मालिक और एक अजनबी को उन्हें 'बैठने' का आदेश देने को कहा। सभी पिल्ले जब पूर्व-किशोरावस्था में थे, तब वे दोनों व्यक्तियों के आदेश पर तुरंत बैठ गए। लेकिन जब यही पिल्ले किशोरावस्था में पहुंचे तो 'बार-बार' उन्होंने अपने पालक का आदेश मानने से इन्कार किया जबकि अनजान व्यक्ति की बात मान ली। जिन कुत्तों का अपने मालिकों से सुरक्षात्मक रूप से लगाव नहीं था उन्होंने अजनबियों के आदेश अधिक माने। यह व्यवहार भी मानव किशोरों की याद दिलाता है।

285 गाइड कुत्तों के पर किए गए एक अध्ययन के डैटा के आधार पर शोधकर्ताओं का कहना है कि अन्य उम्र की तुलना में किशोर कुत्तों को 'प्रशिक्षित' करना अधिक मुश्किल होता है। टीम का मानना है कि कुत्तों और मानव किशोरों के व्यवहार में समानता को देखते हुए मनुष्यों में किशोरावस्था के अध्ययन के लिए कुत्ते अच्छे मॉडल हो सकते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***

समय से पहले फूल खिला देते हैं भूखे भंवरे

फास्ट फूड हमारी भूख शांत करने में मदद करता है। ऐसा ही जुगाड़ भंवरे भी करते हैं। जब मादा भंवरे शीतनिद्रा (हाइबरनेशन) से जागते हैं तो उन्हें अपनी नई कॉलोनी बनाने के लिए ढेर सारे पराग और मकरंद की ज़रूरत होती है। यदि भंवरे समय से पूर्व शीतनिद्रा से जाग जाते हैं तो पर्याप्त मात्रा में पराग जमा करने के लिए आसपास पर्याप्त फूल नहीं खिले होते हैं। *साइंस* पत्रिका में प्रकाशित शोध बताता है कि भंवरों ने इस समस्या का विचित्र समाधान खोजा है - वे फूलों को जल्दी खिलाने के लिए पौधों की पत्तियों में छेद कर देते हैं और फूल वास्तव में निर्धारित समय से कुछ सप्ताह पहले ही खिल उठते हैं।

ईटीएच ज़्यूरिच के शोधकर्ताओं ने भंवरों में पौधों की गंध के प्रति प्रतिक्रिया सम्बंधी एक अध्ययन के दौरान गौर किया था कि भंवरे पौधों की पत्तियों पर अर्ध-चंद्राकार छेद कर रहे हैं। पहले तो शोधकर्ताओं को लगा कि वे पत्तियों का रस चूस रहे हैं। लेकिन भंवरे पत्तियों पर इतनी देर नहीं ठहरे कि पर्याप्त रस ले सकें और ना ही वे पत्तियों का कोई हिस्सा अपनी कॉलोनी में ले गए।

विचित्र अवलोकन यह था कि जिन भंवरों की कॉलोनियों में कम भोजन उपलब्ध था उन्होंने पत्तियों में अधिक छेद किए थे। इसके आधार पर शोधकर्ता सोचने लगे कि कहीं ये छेद फूलों को जल्दी खिलाने के लिए तो नहीं किए जा रहे? यह तो पहले से पता है कि कुछ पौधों में क्षति या तनाव के चलते फूल जल्दी खिलते हैं। लेकिन किसी ने यह नहीं सोचा था कोई परागणकर्ता इस तरह से क्षति पहुंचाएगा।

माजरे को समझने के लिए वैकासिक जीव विज्ञानी मार्क मेशर और उनके साथियों ने ग्रीनहाउस में प्रयोग किया। पहले उन्होंने 3 तीन दिन से पराग से वंचित भंवरों को राई (*ब्रैसिका निग्रा*) के दस पौधों पर छोड़ा। उन्होंने पाया कि भवंरों ने हर पौधे में 5-10 छेद किए और इन पौधों में औसतन 17 दिन बाद फूल खिल गए जबकि जो पौधे भंवरों के संपर्क में नहीं आए थे उनमें औसतन 33 दिन बाद फूल खिले। टमाटर के पौधों पर दोहराने पर उनमें फूल सामान्य से 30 दिन पहले खिल गए।

इसी कड़ी के अगले अध्ययन के आधार पर लगता है कि भूख भवरों को पत्तियों में छेद करने को प्रेरित करती है क्योंकि पराग ले चुके भंवरों की तुलना में पराग से वंचित भंवरों ने पत्तियों में चार गुना अधिक छेद किए। और वसंत की शुरुआत में फूलों के खिलने के पहले, भंवरों ने पत्तियों में अधिक छेद किए लेकिन जैसे-जैसे वसंत आगे बढ़ा और अधिक पराग मिलने लगा तो भंवरों ने पत्तियों में कम छेद किए। यह विचित्र व्यवहार भंवरों की दो जंगली प्रजातियों में देखा गया।

क्या पत्तियों को होने वाली क्षति-मात्र ही पौधों को जल्दी पुष्पन के लिए प्रेरित करती है? यह जानने के लिए शोधकर्ताओं ने एक और अध्ययन किया जिसमें उन्होंने पत्तियों में हू-ब-हू वैसे ही छेद बनाए जैसे भंवरे बनाते हैं। उन्होंने पाया कि सामान्य पौधों की तुलना में इन पौधों में जल्दी फूल आ गए, लेकिन भंवरों द्वारा छिद्रित पौधों की तुलना में देर से फूल आए। इससे लगता है कि भंवरों की लार में ऐसे रसायन होते होंगे जो पौधे को जल्दी पुष्पन के लिए प्रेरित करते हैं।

बहरहाल शोधकर्ता इस बात पर हैरान हैं कि भंवरों में यह व्यवहार कैसे विकसित हुआ होगा। ऐसा लगता नहीं कि भंवरे यह युक्ति सीखते होंगे क्योंकि उनका कुल जीवन बहुत छोटा होता है। और यदि यह जन्मजात है तो समझना मुश्किल है कि उनमें यह शुरू कैसे हुआ। ***(स्रोत फीचर्स)***

धींगामुश्ती: प्रणय या युद्ध

कालू राम शर्मा

गर्मी का मौसम जब उतार पर होता है तब अक्सर दो सांपों का आपस में लिपटना हर किसी का ध्यान आकर्षित करता है। लगता है, दोनों लिपटते हुए नृत्य कर रहे हों।

सांपों द्वारा निर्मित ये दृश्य अक्सर अखबारों की सुर्खियां भी बनते हैं। एक अखबार के ब्यूरो चीफ ने मुझसे सांपों के बीच चलने वाली इस दिलचस्प लीला के बारे जानना चाहा। उन्होंने यह भी पूछा कि क्या यह सच है कि नर और मादा सांपों के बीच यह प्रणय लीला है? उनके पास आपस में लिपटे हुए दो विशाल सांपों का चित्र छपने के लिए आया था। वे उस चित्र का चंद पंक्तियों में कैप्शन देना चाह रहे थे। आम तौर पर इस घटना को नर और मादा का समागम समझा जाता है जो वाकई में मिथ्या है। यह तो दो प्रतिद्वंदी नर सांपों के बीच युद्ध है। दरअसल, धामन नामक सांप की प्रजाति (*Ptyas mucosa*) के नर सदस्यों के बीच यह दृश्य देखा जाना आम बात है।

धामन आम तौर पर खेतों, जंगलों, झाड़ियों में बहुतायत से पाया जाता है और चूहे खाता है। इसकी अधिकतम लंबाई 8 फीट तक हो सकती है। यह एक अत्यंत सक्रिय सांप है और प्रजनन काल में इसकी सक्रियता का बढ़ना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार के दृश्य अक्सर गर्मी के उतार और मानसून की बौछार के साथ शहरों व कस्बों के खुले मैदानों में अधिक दिखने लगते हैं। इसमें दो सांप रस्सी में ऐंठन की तरह लिपट जाते हैं। दोनों का सिर वाला हिस्सा ऊपर की ओर उठा होता है। दोनों एक दूसरे को पटखनी देने की जीतोड़ कोशिश करते हैं। इस युद्ध में वे एक दूसरे से लिपटते हैं और अपने थूथन से एक दूसरे पर वार करते हैं। युद्ध लगभग घंटे भर तक चलता रहता है जब तक कि एक नर दूसरे को पटखनी न दे दे। इस युद्ध में जो सांप पस्त होकर ज़मीन पर गिर जाता है वह समझो हार चुका होता है। युद्ध में जीतने वाला नर सांप फिर आसपास मौजूद मादा के साथ समागम करता है। इसके बाद मादा धामन किसी सुरक्षित जगह पर 6 से 15 की संख्या में अंडे देती है।

सांपों में इस युद्ध को लेकर अधिक अध्ययन नहीं हुए हैं। अमेरिका में सांपों की कई प्रजातियों में यह व्यवहार देखने को मिलता है जिनमें इंडिगो स्नेक, रेटल स्नेक, और कॉटनमाउथ सांप प्रमुख हैं। इन प्रजातियों में मादाओं की तुलना में नर बड़े होते हैं। लड़ाई में नर ज़मीन के लंबवत खड़े होते हैं। इस दौरान वे एक दूसरे को काटते नहीं।

त्रुटिवश धामन सांप में इस घटना को नर और मादा के समागम के रूप में समझा जाता है। लेकिन समागम की प्रक्रिया में नर और मादा इस तरह से आपस में खड़े होकर लिपटते नहीं हैं। नर सांप मादा के शरीर पर रेंगता है। कभी-कभी नर सांप मादा के सिर को दांतों से काटता है। माना जाता है कि यह काटना महज़ मादा के प्रति प्यार दर्शाना हो सकता है। सर्प विज्ञानी युद्ध और प्रणय की इन दोनों घटनाओं की बारीकियों को समझने की कोशिश कर रहे हैं।

प्रजनन काल में नर सांपों के बीच शक्ति प्रदर्शन के लिए होने वाला युद्ध सर्प के दो परिवारों बोइडी व कोल्यूब्रोइडी की लगभग 70 प्रजातियों में देखा गया है। शोधकर्ताओं को क्रिटेशियस काल के बोइडी व कोल्यूब्रोइडी के साझा पूर्वजों में ऐसे व्यवहार के प्रमाण मिले हैं। हालांकि इस दिशा में अभी और सुराग हाथ लगना बाकी है। ***(स्रोत फीचर्स)***

टिड्डियों को झुंड बनाने से कैसे रोकें

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

पिछले कुछ दिनों में कई समाचार पत्रों में राजस्थान-गुजरात के रेगिस्तानी इलाकों से आए टिड्डी दल के बारे में कई विश्लेषणात्मक लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनके उड़ने का रुख अब मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ ओर है। ये टिड्डी दल फसलों को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। लेखों में यह भी बताया गया है कि कैसे सदियों से भारत (और निश्चित ही पाकिस्तान भी) इस प्रकोप से निपटता आ रहा है। (वास्तव में तो महाभारत काल से हीः याद कीजिए, पांडव सेना को चुनौती देते हुए कर्ण कहते हैं, 'हम आप पर शलभासन - टिड्डियों के झुंड - की तरह टूट पड़ेंगे')।

ब्रिटिश सरकार ने 1900 के दशक की शुरुआत में ही भारत के जोधपुर और कराची में टिड्डी चेतावनी संगठन (LWO) की स्थापना की थी। आज़ादी के बाद केंद्रीय कृषि मंत्रालय ने इन संगठनों को बनाए रखा और इनमें सुधार किया। फरीदाबाद स्थित टिड्डी चेतावनी संगठन प्रशासनिक मामलों और जोधपुर स्थित टिड्डी चेतावनी संगठन इसके तकनीकी पहलुओं को संभालते हैं और साथ में कई और स्थानीय शाखाएं भी हैं। वे खेतों में हवाई स्प्रे (आजकल ड्रोन से) और मैदानी कार्यकर्ताओं की मदद से कीटनाशकों का छिड़काव करते हैं।

टिड्डी नियंत्रण

कृषि मंत्रालय की vikaspedia.in नाम से एक वेबसाइट पर टिड्डी नियंत्रण और पौधों की सुरक्षा और उनसे निपटने के वर्तमान तरीकों के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है। और मंत्रालय के वनस्पति संरक्षण, क्वारेंटाइन एवं भंडारण निदेशालय की वेबसाइट (ppqs.gov.in) पर रेगिस्तानी टिड्डों के आक्रमण, प्रकोप और उनके फैलाव के नियंत्रण की आकस्मिक योजना के बारे में बताया गया है।

टिड्डों की समस्या सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि अफ्रीका के अधिकांश हिस्सों, पश्चिमी एशिया, ईरान और ऑस्ट्रेलिया के कुछ हिस्सों में भी है। रोम स्थित संयुक्त राष्ट्र का खाद्य एवं कृषि संगठन इस प्रकोप का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रों को सलाह देता है और वित्तीय रूप से मदद करता है। खाद्य एवं कृषि संगठन का *लोकस्ट एनवायरनमेंटल बुकलेट* नामक सूचनाप्रद दस्तावेज टिड्डी दल की स्थिति और उससे निपटने के तरीकों के बारे में नवीनतम जानकारी देता है। टिड्डी दल और उसके प्रबंधन की उत्कृष्ट नवीनतम जानकारी हैदराबाद स्थित अंतर्राष्ट्रीय अर्ध-शुष्क ऊष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान (ICRISAT) के विकास केंद्र (IDC) द्वारा 29 मई को प्रकाशित की गई है (नेट पर उपलब्ध)।

आम तौर पर टिड्डी दल से निपटने का तरीका 'झुंड को ढूंढ-ढूंढकर मारो' है, जिसका उपयोग दुनिया के तमाम देश करते हैं। निश्चित तौर पर हमें इस प्रकोप से लड़ने और उससे जीतने के लिए बेहतर और नए तरीकों की ज़रूरत है।

टिड्डियां झुंड कैसे बनाती हैं

यहां महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रश्न उठता है कि टिड्डियां क्यों और कैसे हज़ारों की संख्या में एकत्रित होकर झुंड बनाती हैं। काफी समय से कीट विज्ञानी यह जानते हैं कि टिड्डी स्वभाव से एकाकी प्रवृत्ति की होती है, और आपस में एक-दूसरे के साथ घुलती-मिलती नहीं हैं। फिर भी जब फसल कटने का मौसम आता है तो ये एकाकी स्वभाव की टिड्डियां आपस में एकजुट होकर पौधों पर हमला करने के लिए झुंड रूपी सेना बना लेती हैं। इसका कारण क्या है? वह क्या जैविक क्रियाविधि है जिसके कारण उनमें यह सामाजिक परिवर्तन आता है? यदि हम इस क्रियाविधि को जान पाएं तो उनके उपद्रव को रोकने के नए तरीके भी संभव हो सकते हैं।

कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के स्टीफन रोजर्स, ये दल क्यों और कैसे बनते हैं, इसके जाने-माने विश्वस्तरीय विशेषज्ञ हैं। साल 2003 में प्रकाशित अपने एक पेपर में वे बताते हैं कि जब एकाकी टिड्डी भोजन की तलाश में संयोगवश

एक-दूसरे के पास आ जाती हैं और संयोगवश एक-दूसरे को छू लेती हैं तो यह स्पर्श-उद्दीपन (यहां तक कि पिछले टांग के छोटे-से हिस्से में ज़रा-सा स्पर्श भी) उनके व्यवहार को बदल देता है। यह यांत्रिक उद्दीपन टिड्डी के शरीर की कुछ तंत्रिकाओं को प्रभावित करता है जिससे उनका व्यवहार बदल जाता है और वे एक साथ आना शुरू कर देती हैं। और यदि और अधिक टिड्डियां पास आती हैं तो उनका दल बनना शुरू हो जाता है। और छोटा-सा कीट आकार में बड़ा हो जाता है, और उसका रंग-रूप बदल जाता है। अगले पेपर में वे बताते हैं कि टिड्डी के केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करने वाले कुछ रसायनों में परिवर्तन होता है; इनमें से सबसे महत्वपूर्ण है सिरोटोनिन। सिरोटोनिन मूड और सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित करता है।

इन सभी बातों को एक साथ रखते हुए रोजर्स और उनके साथियों ने साल 2009 में *साइंस* पत्रिका में एक पेपर प्रकाशित किया था जिसमें वे बताते हैं कि वास्तव में सिरोटोनिन दल के गठन के लिए ज़िम्मेदार होता है। इस अध्ययन में उन्होंने प्रयोगशाला में एक प्रयोग किया जिसमें उन्होंने एक पात्र में एक-एक करके टिड्डियों को रखा। जब टिड्डियों की संख्या बढ़ने लगी तो उनके समीप आने ने यांत्रिक (स्पर्श) और न्यूरोकेमिकल (सिरोटोनिन) उद्दीपन को प्रेरित किया, और कुछ ही घंटो में झुंड बन गया! और जब शोधकर्ताओं ने सिरोटोनिन के उत्पादन को बाधित करने वाले पदार्थों (जैसे 5HT या AMTP अणुओं) को जोड़ना शुरू किया तो उनके जमावड़े में काफी कमी आई।

झुंड बनने से रोकना

अब हमारे पास इस टिड्डी दल को बनने से रोकने का एक संभावित तरीका है! तो क्या हम जोधपुर और अन्य स्थानों में स्थित टिड्डी चेतावनी संगठन के साथ मिलकर, दल बनना शुरू होने पर सिरोटोनिन अवरोधक रसायनों का छिड़काव कर सकते हैं? रोजर्स *साइंस* पत्रिका में प्रकाशित अपने पेपर में पहले ही यह सुझाव दे चुके हैं। क्या यह मुमकिन है या यह एक अव्यावहारिक विचार है? इस बारे में विशेषज्ञ हमें बताएं। इसे आज़मा कर तो देखना चाहिए।

और अंत में टिड्डी दल पर छिड़काव किए जाने वाले कीटनाशकों (खासकर मेलेथियोन) के दुष्प्रभावों को जांचने की ज़रूरत है हालांकि कई अध्ययन बताते हैं कि यह बहुत हानिकारक नहीं है। फिर भी हमें प्राकृतिक और पशु उत्पादों का उपयोग कर जैविक कीटनाशकों पर काम करने की ज़रूरत है जो पर्यावरण, पशु और मानव स्वास्थ्य के अनुकूल हों। ***(स्रोत फीचर्स)***

चींटियां स्मृतियां मस्तिष्क के विभिन्न हिस्सों में संजोती हैं

हमारा मस्तिष्क अलग-अलग किस्म की स्मृतियों को मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्सों में सहेजता है। जैसे दृश्य सम्बंधी स्मृतियां मस्तिष्क के दाएं हिस्से में सुरक्षित रहती हैं तो शब्दिक स्मृतियां मस्तिष्क के बाएं हिस्से में। ऐसा ही स्मृति विभाजन हमें सॉन्ग बर्ड्स और ज़ेब्रा फिश में भी देखने को मिलता है। अब *प्रोसिडिंग्स ऑफ दी रॉयल सोसायटी बी* में प्रकाशित अध्ययन बताता है कि चींटियों का नन्हा-सा मस्तिष्क भी अलग-अलग तरह की स्मृतियां अलग-अलग हिस्सों में सहेजता है। इस प्रक्रिया को पार्श्वीकरण कहते हैं।

यह जानने के लिए कि क्या चींटियों का मस्तिष्क दृश्य स्मृतियों को मस्तिष्क के अलग हिस्से में सहेजता है, पहले तो शोधकर्ताओं ने जंगली चींटियों (*फॉर्मिका रूफा)* को ठीक उस तरह प्रशिक्षित किया जैसे इवान पावलॉव ने कुत्तों को प्रशिक्षित किया था। उन्हें एक संकेत दिया जाता और फिर उसके साथ भोजन मिलता था।

उन्होंने दर्जनों चींटियों के साथ यह प्रयोग किया। प्रयोग यह था कि जब भी चींटियां नीले रंग की वस्तु देखें तो या तो उनके दाएं एंटीना पर, या बाएं एंटीना पर, या दोनों एंटीना पर मीठे पानी की एक बूंद लगाई गई। इस तरह उन्होंने चींटियों में नीले रंग की वस्तु से प्यास का सम्बंध बनाया। इसके बाद शोधकर्ताओं ने 10 मिनट, 1 घंटे और 24 घंटे बाद उनकी स्मृति का परीक्षण किया। वे देखना

चाहते थे कि नीली वस्तु दिखाने पर क्या चींटियां मीठे पानी के लिए अपना मुंह खोलती हैं जो प्यास का द्योतक होगा।

शोधकर्ताओं ने पाया कि जिन चींटियों का दायां एंटीना छूकर प्रशिक्षित गया था उन्होंने 10 मिनट बाद के परीक्षण में मीठे पानी के लिए तुरंत प्रतिक्रिया दी, 1 घंटे के बाद सुस्त प्रतिक्रिया दी लेकिन उसके बाद कोई प्रतिक्रिया ही नहीं दी। और जिन चींटियों का बायां एंटीना छूकर प्रशिक्षित किया गया था उन चींटियों ने 10 मिनट और 1 घंटे बाद तो कोई प्रतिक्रिया नहीं दी लेकिन 24 घंटे बाद प्यास की प्रतिक्रिया दी। इससे तो लगता है कि चींटियों के मस्तिष्क का एक हिस्सा अल्पकालीन स्मृतियों को और दूसरा हिस्सा दीर्घकालीन स्मृतियों को सहेजता है।

कीटों में यह पहली बार देखा गया है कि अल्प और दीर्घकालीन दृश्य स्मृतियां मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्से में सहेजी जाती हैं। शोधकर्ताओं का कहना है यह कीटों की एक ऐसी विशेषता हो सकती है जो उन्हें ऊर्जा और स्मृति सहेजने की क्षमता की बचत करने में मदद करती हो। ***(स्रोत फीचर्स)***

चोरनी चींटियां अन्य चींटियों के बच्चे खाती हैं

अक्सर चींटियां खाने के सामान में चुपके से घुस जाती हैं और उसका नाश कर डालती हैं। लेकिन चींटियों के घर में भी चोरी होती है। खसखस के आकार की चोरनी चींटी (थीफ एंट), अपने से बड़ी चींटियों के बच्चों को अपना भोजन बनाती है। *इकॉलॉजी* पत्रिका में प्रकाशित एक अध्ययन बताता है कि अन्य चींटी प्रजातियों को चोरनी चींटियों की इस हरकत की इतनी भारी कीमत चुकानी पड़ती है, कि पूरी खाद्य श्रृंखला तहस-नहस हो जाती है।

उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका में चोरनी चींटियों की कई प्रजातियां हैं। अधिकांश भूमिगत रहती हैं। ये चींटियां बड़ी चींटियों की बांबी में सुरंग बनाती हैं और अपने से 24 गुना तक बड़ी अन्य चींटियों के बच्चे चुराकर खा जाती हैं। वे वयस्क चींटियों को दूर रखने के लिए उन पर ज़हरीला विष छिड़क देती हैं।

चोरनी चींटियों के काफी संख्या में मौजूद होने के बावजूद, उनके छोटे आकार और भूमिगत रहने के कारण वे अधिकतर वैज्ञानिकों के द्वारा उपेक्षित ही रही हैं। युनिवर्सिटी ऑफ सेंट्रल फ्लोरिडा के छात्र लियो ओहयामा देखना चाहते थे कि जब ये चोरनी चींटियां न हों तो क्या होगा? इसके लिए उन्होंने स्टेट पार्क की रेतीली मिट्टी में 18-18 वर्ग मीटर के 20 प्लॉट तैयार किए। इनमें से 10 प्लॉटों में 14 महीनों तक हर महीने प्लास्टिक ट्यूब में कीटनाशक युक्त चारा रखा। इस ट्यूब के निचले भाग में ऐसी जाली लगाई गई थी कि बड़ी चींटियां इस छेद से अंदर ना जा पाएं।

उन्होंने पाया कि कीटनाशक युक्त भोजन रखने से चोरनी चींटियों की संख्या में 71 प्रतिशत की कमी आई और बड़ी चींटियों की संख्या में 35 प्रतिशत की वृद्धि हुई। उन्होंने यह भी पाया कि अध्ययन के दूसरे वर्ष में मई और जून के दौरान, जब चींटियों की संख्या सबसे अधिक होती है, चोरनी चींटियों की संख्या में 82 प्रतिशत की कमी आई और बड़ी चींटियों में 65 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

ऐसा लगता है कि चोरनी चींटियां कुछ ही प्रजातियों को अधिक लक्ष्य करती हैं। क्योंकि जब चोरनी चींटियों की संख्या में कमी आई थी तब पिरामिड चींटी (*Dorymyrmex bureni*) की संख्या लगभग दुगनी हो गई थी, जबकि निशाचर चींटियों (*Nylanderia arenivaga*) की श्रमिक चींटियों की संख्या में 98 प्रतिशत वृद्धि हुई थी। ओहयामा का कहना है कि ये नतीजे बताते हैं कि ये शिकार की गतिविधियां अत्यधिक जटिल हैं और लंबे समय में विकसित हुई होंगी और इस दौरान कुछ चींटियों ने बचाव के तरीके भी विकसित किए होंगे।

युनिवर्सिटी ऑफ कॉनकॉरिडा के समुदाय पारिस्थितिकीविद ज़्यां-फिलिप लेसार्ड का सुझाव है कि इस प्रयोग को लंबे समय तक करके देखना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ये प्रभाव लंबे समय तक बने रहते हैं। इसके अलावा अध्ययन में सिर्फ चींटियों की संख्या, जो काफी बदलती रहती है, की बजाय कॉलोनी के घनत्व को देखना चाहिए था। ***(स्रोत फीचर्स)***

बकरियों का पालतू गुण

बकरियां सख्तजान होती हैं। इन्होंने कोलंबस के साथ अटलांटिक महासागर की लंबी यात्राएं कीं और मेफ्लावर तीर्थ यात्रियों के साथ रहीं - इस दौरान सूखे और परजीवियों का सामना किया। हाल ही में एक शोध ने इनकी सहनशीलता की उत्पत्ति का खुलासा किया है। प्राचीन समय में कुछ हेराफेरी के ज़रिए इस पालतू प्रजाति (*Capra aegagrus hircus*) में जंगली बकरी से एक जीन आया जो इसे कृमि संक्रमण से बचाता है। अन्य जीन्स के साथ जुड़कर इस जीन ने बकरी को सबसे पहला पालतू जानवर बनाने में मदद की। स्मिथसोनियन संस्थान के प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय में मानव विज्ञानी पुरातत्वविद मेलिंडा ज़ेडर का कहना है कि इस खोज से पालतूकरण के शुरुआती दिनों में जंगली प्रजातियों के साथ परस्पर प्रजनन का महत्व स्पष्ट होता है।

कई शोधकर्ता मानते हैं कि बकरियां प्रथम पालतू पशु हैं। इन्हें लगभग 11 हज़ार साल पहले फर्टाइल क्रीसेंट में पालतू बनाया गया था। माना जाता है कि तुर्की और ईरान में मनुष्य ने सबसे पहले पालतू बकरियों के जंगली वंशज बेजोर को बाड़ों में पालना शुरू किया था। लेकिन तब से लेकर अब तक क्या हुआ यह एक रहस्य ही रहा है।

नॉर्थवेस्ट ए एंड एफ युनिवर्सिटी के पशु आनुवंशिकीविद ज़ियांग यू और एक अंतर्राष्ट्रीय टीम ने दुनिया भर की 88 पालतू बकरियों, 6 जंगली बकरी प्रजातियों और 4 बकरी जीवाश्मों के जीनोम की तुलना 131 अन्य पालतू, जंगली और प्राचीन बकरियों की पहले से उपलब्ध जीनोमिक जानकारी के साथ की। वे यह देखना चाहते थे जीनोम के कौन-से महत्वपूर्ण हिस्से से बकरी का पालतू बनना तय हुआ था।

ज़ियांग और उनके साथियों ने *साइंस एडवांसेस* में बताया है कि विशेष रूप से एक जीन *MUC*6 महत्वपूर्ण है। आज लगभग हर पालतू बकरी में इस जीन का संस्करण मौजूद है। यह वेस्ट कॉकेशियन टुर नामक जंगली बकरी से आया है। संभवतः यह जीन संस्करण परस्पर प्रजनन के ज़रिए 7200 साल पहले पालतू बकरी में पहुंचा था।

MUC6 जीन आंत के अस्तर के एक प्रोटीन का कोड है। अन्य जंतुओं में यह प्रतिरक्षा तंत्र का हिस्सा है। यह देखने के लिए कि यह परजीवियों से रक्षा कर सकता है या नहीं, शोधकर्ताओं ने जंगली टुर के जीन संस्करण वाली और इसके अन्य संस्करणों वाली पालतू बकरियों के मल का विश्लेषण किया। देखा गया कि टुर संस्करण वाली बकरियों के मल में कृमियों के अंडों की संख्या बहुत कम थी। अर्थात जीन का टुर संस्करण कुछ सुरक्षा प्रदान करता है।

ज़ियांग कहते हैं कि यह बात समझ में आती है क्योंकि टुर काले समुद्र के तट पर रहती थी जहां का मौसम उमस वाला था, यहां परजीवियों के संक्रमण का खतरा अन्य जगहों की बकरियों से ज़्यादा था। आजकल की बकरियों का मूल स्थान दक्षिण-पश्चिम एशिया का सूखा क्षेत्र था।

कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि पालतू बनाने के लिए सबसे मूल्यवान कारक दूध का उत्पादन या शारीरिक बनावट होते हैं। लेकिन इस अध्ययन में यह पता चलता है कि शायद ज़्यादा महत्वपूर्ण यह था कि पालतू जानवर भीड़भाड़ वाली जगहों में जीवित रह सकें जहां पर संक्रमण का खतरा ज़्यादा होता है। ज़ियांग का कहना है कि स्वस्थ मवेशी पाने की इच्छा और टुर के इस जीन संस्करण के फायदों के चलते यह 1000 वर्षों में ही 60 प्रतिशत पालतू बकरियों में फैल गया।

टीम को पालतू बकरियों में कई और जीन्स मिले हैं जिनका सम्बंध शायद बकरियों के दब्बू व्यवहार से हो लेकिन और शोध के बगैर कुछ कहा नहीं जा सकता। ***(स्रोत फीचर्स)***

मांसाहारी पौधों में मांस के चस्के का विकास

किसी पौधे में मांस का चस्का विकसित होना काफी अजीब लगता है। लेकिन हाल ही में मांसाहारी पौधों की तीन नज़दीकी प्रजातियों पर किए गए अध्ययन से पता चला है कि कुशल आनुवंशिक फेरबदल ने उन्हें प्रोटीन युक्त भोजन को प्राप्त करने और पचाने की क्षमता विकसित करने में मदद की है।

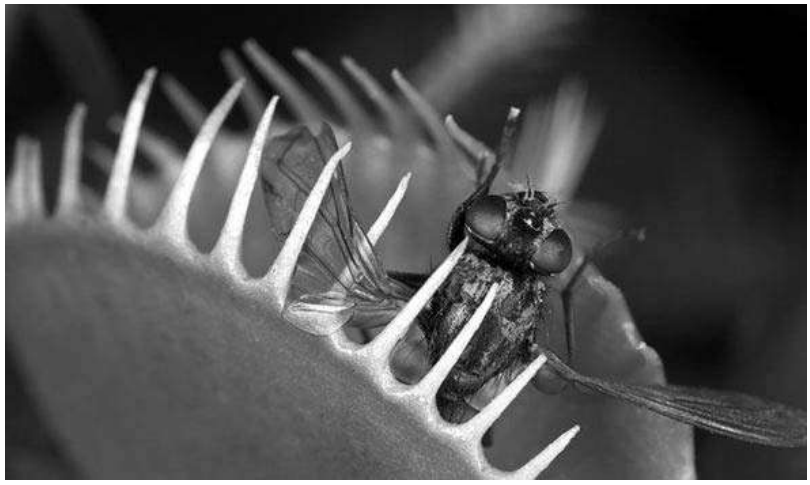

मांसाहारी पौधों ने शिकार के लिए कई कुटिल तरीके विकसित किए हैं। जैसे कलश पादप (पिचर प्लांट) तो एक फिसलन भरे कलश की मदद से कीड़ों को पकड़ता है जिसमें प्रोटीन को पचाने वाले एंज़ाइम होते हैं। मांसाहारी पौधों की कुछ अन्य प्रजातियां हैं: वीनस फ्लाईट्रैप (*Dionaea muscipula*), जलीय वॉटरव्हील प्लांट (*Aldrovanda vesiculosa*), और सनड्यू (*Drosera spatulata*)। ये गतिशील ट्रैप का उपयोग करते हैं। जैसे सनड्यू पर जब कोई मच्छर बैठता है तो उस जगह को लपेट लिया जाता है। वीनस फ्लायट्रैप में विशेष पत्तियां होती हैं जो कीड़े के बैठने पर बंद हो जाती हैं।

इन गतिशील ट्रैप्स के विकास की खोजबीन के लिए युनिवर्सिटी ऑफ वुर्ज़बर्ग के कम्प्यूटेशनल वैकासिक जीव विज्ञानी जोर्ग शुल्ट्ज़ और वनस्पति विज्ञानी रेनर हेड्रिक व अन्य शोधकर्ताओं ने इन तीनों प्रजातियों के जीनोम की तुलना नौ पौधों के जीनोम से की जिनमें मांसाहारी पिचर प्लांट के अलावा चुकंदर एवं पपीते जैसे साधारण पौधे शामिल थे।

करंट बायोलॉजी में प्रकाशित एक रिपोर्ट में उन्होंने बताया है कि मांस भक्षण करने वाली इन प्रजातियों के जीनोम में लगभग 6 करोड़ वर्ष पुराने एक साझा पूर्वज के जीनोम में दोहराव हुआ है। इस दोहराव ने जड़ों, पत्तियों और संवेदी प्रणाली में उपयोग किए जाने वाले जीन की प्रतियों को मुक्त किया जो शिकार की पहचान पचाने में काम आने लगीं। उदाहरण के लिए, मांसाहारी पौधों ने कुछ जीन्स, जिनका उपयोग जड़ों द्वारा पोषक पदार्थों के अवशोषण के लिए होता था, को नए काम के लिए तैनात किया - पचे हुए कीट से पोषक तत्व सोखने में। शोधकर्ताओं के मुताबिक, यह रोचक बात है कि जड़ों के जीन्स पत्तियों में अभिव्यक्त हो रहे हैं।

टीम का निष्कर्ष है कि इन तीन प्रजातियों में और कलश पादप में मांस भक्षण की प्रवृत्ति का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है। दरअसल, उनका कहना है कि पौधों में मांस भक्षण की उत्पत्ति कम से कम छह बार स्वतंत्र रूप से हुई है। वैसे, युनिवर्सिटी ऑफ बफैलो के पादप जीव विज्ञानी विक्टर अल्बर्ट इन दो स्वतंत्र उत्पत्तियों के पक्ष में डैटा को अपर्याप्त बताते हैं। उनके अनुसार शिकार के लिए कुछ आवश्यक जीन तो कलश पादप और इन तीन पौधों के साझा पूर्वज में उपस्थित थे। उनकी टीम अब अन्य दो सनड्यू पौधों का अनुक्रमण कर रही है ताकि स्थित को स्पष्ट किया जा सके। हेड्रिक को यह भी लगता है कि मांसाहार के जीन कई पौधों में पाए जाते हैं। अतः मांसाहार का मार्ग सबके लिए खुला है। ***(स्रोत फीचर्स)***

चमगादड़ हमारे दुश्मन नहीं हैं

डरावनी फिल्मों से लेकर सांस्कृतिक चित्रणों में चमगादड़ को हमेशा से एक निराधार भय से जोड़कर दिखाया गया है। और अब कोविड-19 महामारी का मुख्य स्रोत होने के कारण चमगादड़ और भी बदनाम हुए हैं। ऐसे में हो सकता है कि चमगादड़ों को खत्म करने के प्रयास किए जाएं। तब चमगादड़ों का संरक्षण करना कठिन हो जाएगा, साथ ही उनसे मिलने वाले महत्वपूर्ण लाभों की रक्षा करना भी मुश्किल हो जाएगा। संभावना तो यह भी है कि चमगादड़ों के खात्मे से नई परेशानियां खड़ी हो जाएं।

वास्तव में चमगादड़ों की कुछ रोगाणुओं के प्रति बहुत आक्रामक प्रतिरक्षा प्रणाली होती है, जिसकी वजह से वायरस और भी घातक रूप में विकसित हो जाते हैं। ऐसे में मनुष्यों में यदि इस तरह का कोई वायरस प्रवेश कर जाता है तो यह जानलेवा बन सकता है।

लेकिन यहां चमगादड़ों से मिलने वाले लाभों पर बात करना भी आवश्यक है। चमगादड़ हमारे जंगलों को पुनर्जीवित करते हैं और उर्वरक प्रदान करते हैं। ये 300 से अधिक प्रजातियों की फसलों का परागण करते हैं। ककाओ, कपास, मकई और अन्य पौधों को कीटों से बचाते हैं। ये कम विकसित देशों में कीटों का सफाया करते हैं। जब अमेरिका के कृषि क्षेत्रों में कीटों का सफाया करने वाले चमगादड़ों की संख्या में कमी हुई थी तब कृषि क्षेत्रों में वाइट-नोज़ सिंड्रोम से शिशु रुग्णता और मृत्यु दर में तेज़ी से वृद्धि हुई थी क्योंकि कीटों से निपटने के लिए हानिकारक कीटनाशकों का छिड़काव बढ़ा था। चमगादड़ मलेरिया फैलाने वाले कीटनाशक प्रतिरोधी मच्छरों का भी भक्षण करते हैं।

भविष्य में सार्स और एबोला के जोखिम को कम करने के लिए चमगादड़ों को नुकसान पहुंचने से रोगों का खतरा बढ़ सकता है। पूर्व में इस तरह के असफल प्रयास पेरू, युगांडा, मिस्र, ऑस्ट्रेलिया और इंडोनेशिया में किए जा चुके हैं। लेकिन अभी भी यह सवाल बना हुआ है कि आने वाली महामारियों को कैसे रोका जा सकता है। चमगादड़ों के संरक्षण की आवश्यकता है, साथ ही उनके क्षेत्रों में मानव गतिविधियों को कम करके संक्रमण से बचा जा सकता है। उदाहरण के लिए जंगलों के कम होने से फलभक्षी चमगादड़ों का प्रवास बांग्लादेश के खजूर के पेड़ों पर हुआ और देखते ही देखते वहां निपाह वायरस का संक्रमण शुरू हो गया। लेकिन अपने मूल निवास में रहते हुए चमगादड़ों द्वारा पालतू जानवरों में वायरस के फैलने की संभावना न के बराबर है।

ऐसे में बड़े पैमाने पर उनके प्राकृतिक वास की बहाली से हम चमगादड़ों का संपर्क मनुष्यों और पालतू जानवरों से कम कर सकते हैं। इसके अलावा हम कृत्रिम आवास और देशी फलों के वृक्षों को विशेष रूप से उनके लिए लगा सकते हैं। इसके साथ ही सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके व्यापार को सीमित या समाप्त करने पर विचार करना चाहिए। यह मनुष्यों से चमगादड़ों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क को रोकने का सबसे आसान तरीका है।

सौभाग्य से हमारे पास इस तरह के वायरसों से निपटने के कुछ नए तरीके सामने आ रहे हैं। आधुनिक जीनोम अनुक्रमण विधियों से चमगादड़-वायरस सम्बंध के रहस्यमयी क्षेत्र में कुछ रास्ता साफ हुआ। हालांकि टीकों और आधुनिक तकनीकों पर काम करने के साथ यह भी आवश्यक है कि हम चमगादड़ों को संरक्षित करने, उनकी उपस्थिति को स्वीकार करने और उनसे मिलने वाले लाभों के संदेश को लोगों तक पहुंचाएं ताकि स्वास्थ्यप्रद भविष्य संभव हो सके।

(स्रोत फीचर्स)

स्रोत विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स
RNI REG. NO: MPHIN/2007/20200

चंद्रमा की गति : प्रयोग

सूरज, चांद, तारे हमेशा से कौतूहल का विषय रहे हैं। हर सभ्यता में लोगों ने इनका अवलोकन करके पैटर्न बनाने की कोशिश की है। सदियों से लोग परछाइयां दे खकर समय का अनुमान लगाने की कोशिश करते रहे हैं क्योंकि परछाई से अंदाज़ लगाया जा सकता है कि आकाश में सूरज कहां है। एक छड़ी की मदद से हम सूरज की गति का अच्छा अंदाज़ लगा सकते हैं। यूनान में एरेटोस्थेनीज नामक वैज्ञानिक ने तो एक छड़ी की मदद से घर बैठे पृथ्वी को नाप लिया था। तो छड़ी के कुछ प्रयोग आप भी करें। अगले कुछ अंकों में हम आकाश की टोह लेने के ऐसे कुछ आसान प्रयोग सुझाएंगे, जिन्हें करके मज़ा भी आएगा और शायद समझ भी बढे।

अब तक आपने मोटे तौर पर सूरज की आभासी गति के अवलोकन किए हैं। अब ज़रा चंद्रमा पर ध्यान देते हैं। आम तौर पर माना जाता है कि दिन के समय आकाश में सूर्य रहता है और रात के समय चंद्रमा। क्या यह सही है?

यह तो सही है कि हम सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच की अवधि को दिन कहते हैं। लेकिन क्या हम रात को चंद्रमा के उदय और अस्त से परिभाषित कर सकते हैं? तो सबसे पहले देखने वाली बात यह है कि क्या चंद्रमा दिन के समय भी आसमान में नज़र आता है। आपने शायद देखा होगा कि महीने के कुछ दिन ऐसे होते हैं जब चंद्रमा दिन के समय आसमान में नज़र आता है। तो दो तरह के रिकॉर्ड रखिए। पहला रिकॉर्ड तो यह रखिए कि मध्यान्ह के पहले चांद किन दिनों दिखता है और मध्यान्ह के बाद किन दिनों। यदि हम आकाश को दो हिस्सों में बांट दें (पूर्वी आधा और पश्चिमी आधा) तो दूसरा रिकॉर्ड यह रखिए कि किन दिनों चांद आकाश के पूर्वी हिस्से में दिखता है और किन दिनों पश्चिमी हिस्से में।

एक बात यह भी देखी जा सकती है कि चांद का उभरा हुआ हिस्सा क्या पूर्व की ओर है या पश्चिम की ओर। इन सब अवलोकनों के आधार पर आप बता सकते हैं कि वह कृष्ण पक्ष है या शुक्ल पक्ष - यानी अब पूर्णिमा आने वाली है या अमावस्या। करके देखिए।

प्रकाशक, मुद्रक अरविन्द सरदाना की ओर से निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन
द्वारा एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, फॉर्च्यून कस्तूरी के पास, जाटखेड़ी
रोड, जाटखेड़ी, भोपाल, म. प्र.
पिन - 462 026 से प्रकाशित तथा
आदर्श प्राइवेट लिमिटेड, इंदिरा प्रेस कॉम्पलेक्स, एम.पी. नगर, ज़ोन-1 भोपाल
(म.प्र.) 462011 से मुद्रित। सम्पादक: डॉ. सुशील जोशी